केरल ज्योति

जून 2024

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

ISO 9001: 2015

केरल हिंदी प्रचार सभा

आचार्य (बी.एड) कोर्स 2024-26 का उद्घाटन केरल विधान सभा के पूर्वाध्यक्ष श्री. एम. विजयकुमार दीप प्रज्वलित कर कर रहे हैं।

श्री. एम. विजयकुमार भाषण दे रहे हैं।

सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) बी. मधु भाषण दे रहे हैं।

केरलज्योति
केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका
(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक
स्व. के वासुदेवन पिल्लै
पूर्व समीक्षा समिति
प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर
परामर्श मंडल
डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे
प्रबन्ध संपादक
गोपकुमार एस (अध्यक्ष)
मुख्य संपादक
प्रो डी तंकप्पन नायर
संपादक
डॉ. रंजीत रविशैलम
संपादकीय मंडल
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 61 दल : 3 अंक: **जून 2024**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

मानस कैलास - **मूल : मंजु वेल्लायणि**
अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम 6

पुराण के अनमोल स्त्री रत्न और पवन करण -
स्त्रीशतक में स्त्री विमर्श - **डॉ.इंदु.के.वी** 8

ऊर्मिला शिरीष की कहानियों में चित्रित अभिशप्त वृद्धावस्था - **बिजी.बी** 11

अल्पना मिश्र के कथा साहित्य में कामकाजी नारी - **श्यामलतिका.एस** 13

मुक्तिबोध की कविता में आधुनिकता का स्वर-**डॉ.रीना कुमारी वी.एल.** 15

सुमित्रानंदन पंत जी के काव्य में चित्रित प्रकृति-चित्रण - **शालिनी.सी** 18

भूमंडलीकरण और हिंदी - **डॉ.जिनो पी वरुगीस** 20

आदिवासी समाज में प्राकृतिक शक्ति की अवधारणा और उनकी
पर्यावरण दृष्टि - **डॉ.राठोड पुंडलिक** 23

'गाँधीजी बोले थे' उपन्यास में इतिहास बोध; गाँधीवाद के परिप्रेक्ष्य में
अरुंधती मोहन 28

भारत की मंदिर कलाओं में क्वीर : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में
अभिरामी.सी.जे 31

पृथ्वीराज रासो : एक ऐतिहासिक लोक - आख्यान - **डॉ. राजेश कुमार** 35

मन्नू भंडारी की कहानियों में नारी संघर्ष - **एन.हरिप्रसाद** 38

बेमेतरा जिले में आर्थिक कारक एवं ग्रामीम शिशु मन्यता :
एक भौगोलिक विश्लेषण - **मधु एवं डॉ.टिके सिंह** 42

हानूश : संघर्षशील कलाकार की संवेदानात्मक अभिव्यक्ति -
डॉ. रमीष.एन 47

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 52

प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम** 54

मुखचित्र : भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री.नरेन्द्र मोदी

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- ***आजीवन चंदा : रु. 2500/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 250/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222
E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.com

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
जून 2024

संपादकीय

विदेशों में हिंदी की व्यापक स्वीकृति

विदेशों में लगभग 154 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ायी जाती है जिनमें आप्रवासी भारतीयों के अलावा भारतीय छात्र भी हैं। पहले हिंदी का अध्ययन साहित्य-संस्कृति एवं भाषा के रूप में होता था। लेकिन आज हिंदी को एक व्यवसायिक एवं व्यावहारिक भाषा के रूप में अपनाया जा रहा है। जहाँ साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति, मान्यताओं तथा भावनात्मक धरोहरों को अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया जाता है वहीं रोज़ी-रोटी के लिए प्रयोजनात्मक हिंदी को अपनाया जाता है। हिंदी को अपनाया जाने के पीछे उसकी सांस्कृतिक भूमिका भी है। विदेश के कुछ केवल हिंदी की विशिष्टता की ओर आकृष्ट नहीं हुए बल्कि उन्होंने इस भाषा पर अपनी प्रभुता भी सिद्ध किया। उन विद्वानों की महती भूमिका यह रही है कि उन्होंने हिंदी में रचनायें की तथा हिंदी से अपनी भाषा में और अपनी भाषा से हिंदी में भी अनुवाद किया। इस प्रकार इन लोगों के प्रयत्न से हिंदी ज्ञान-विज्ञान और भारतीय संस्कृति के आदान-प्रदान का माध्यम बन गई।

जिन देशों ने हिंदी को अपनी अस्मिता के साथ जोडे रखा उनमें प्रमुख है सूरीनाम, फीजी, ट्रिनिडाड, गयाना आदि। भारत के पडोसी नेपाल, भूटान, म्यान्मार, श्रीलंका, पाकिस्तान आदि देशों में भाषा के रूप में हिंदी विद्यमान है। ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, जर्मनी, स्वीडन, फ्रांस, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, रूस, जापान आदि देशों में भारतीयो की संख्या बहुत बढ़ रही है। भारतीय अप्रवासियों की संख्या व्यापार, रोज़गार आदि क्षेत्रों में निरंतर बढ़ रही है। उपर्युक्त कई देशों में हिंदीभाषी भारतीय मूल के नागरिकों की संख्या इतनी अधिक है कि वे वहाँ की राजनीति, प्रशासन एवं सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण अंग हो गए। इंगलैण्ड में भारतीय लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है और एक सर्वेक्षण में यहाँ तक कहा गया है कि लंदन की दूसरी भाषा हिंदी होती जा रही है। यह गर्व की बात है कि विश्वसमुदाय के सामने हिंदी की व्यापक स्वीकृति जारी है।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

यात्राविवरण

मानस कैलास

अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर

मूल : मंजु वेल्लायणि

अनुवाद : डॉ.रंजीत रविशैलम

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

चौदहवें दिन वापस आकर लामा ने कहा: "आज रात को समूचे क्षेत्र में तुम्हारे सिद्ध जादू-टोने के चिह्न देख सकते हैं। शाम को ही संप्रदाय रक्षक विश्वस्त देवता द्वारा माँगी गई वस्तुएँ प्रस्तुत कीं। अर्थात् पैंतीस सिर एवं रक्तसिंचित हृदय। चरम आह्लाद में मुग्ध दावत का रुचिर प्राप्त करना प्रारंभ करके पैंतीस लोगों को ही मृत्यु के मुँह में फेंक दिया था।

माँ की मनः शांति हेतु गदाई जादू-टोना कर, आँधी की सृष्टि कर तथा हिम वर्षा कर भारी पाप का संचय करते मिलरेपा बाद में पछता रहे हैं। स्वयं निर्मित हिमपात में पंछियों एवं मृगों का मरना देखकर उनसे रहा नहीं गया। उन लाशों को लामा के चरणों पर रखकर भभक भभक कर रोया। बिलखकर कहा कि पाप परे पाप ही कर पाया है। दुर्लभ मानवजन्म प्राप्त करने के बाद भी बिना सच जाने मर खपने वालों के बारे में सोच करुणा आ गई।

बहुत सालों बाद घर-वापस आने पर मिलरेपा ने वहाँ तहस-नहस हुआ घर और माँ की हड्डियों को देखा। जीवन की निरर्थक स्थिति ज्ञात आपने अपना बचा हुआ जीवन सत्य-धर्मादि के लिए रखा। जैसे शेर के पदचिह्नों का अनुगमन करता खरगोश किसी गड्डे में गिरकर मर जाता है वैसे ही स्थिति पहचानकर मिलरेपा अपने संन्यास जीवन का सार प्रेयसी सेस्से से कहते है : "अपनी ख्याति एवं उन्नति-सुख के लिए एक-दो पुस्तकें याद करके विशुद्धि का वेश धारण कर चलनेवाले भी होते हैं। स्वयं की विजय एवं दूसरों की पराजय में मद करते वे धर्म के नाम पर संपत्ति अर्जित करते हैं। उनका बड़ा नाम व पीतवस्त्र लोगों को उल्लू बनाने के लिए होते हैं। उनके खिलाफ मैं हमेशा रहा हूँ। कितने ही शताब्दियों पहले की मिलरेपा की यह उक्ति - पंचसितारे आश्रमों देवालय समुच्चयों को देखकर अर्थयुक्त स्मयन करती है।

बारिश और यात्रा चलती रही। मौसम में आए बदलाब को देखकर कुछ लोग यात्रा रद्द करके घोडे पर षेरसोम में वापस आ रहे हैं। हाच्चु नदी के पानी का स्तर भी ऊपर हो आया है। प्रवाह भी तेज़ होने लगा है। दोनों ओर की पर्वतमाला में से बहुत तेज़ी से प्रवाहित होता पानी पैदल चलने वालों को भयभीत करते हुए मुखर के साथ नीचे गिर रहा है। रास्ते के कई भाग कीचड़ बन गए हैं। उस स्थान में कुछ ऊपर को चलकर पत्थरों के बीच में से सफर ज़ारी रखी। इस बीच चीनी सैनिकों की एक गाडी बड़ी मुश्किल से वहाँ से हो निकली। उसके पीछे से एक जे सी बी भी। नदी के इर्दगिर्द मिट्टी-पत्थर भरे

पड़े हैं। पानी का स्तर अचानक ऊपर आने का कारण भी वही है। ऊपरी भागों से उसे नहीं हटाने पर तराइयाँ पानी के नीचे हो जाएँगी। बारिश तेज़ होने के ठीक उसी पल में चीनी सैनिक को बड़े ही ध्यान से प्रतिक्रिया करना चाहिए। नहीं तो इतने सुदूर इतनी जल्दी जे.सी.बी. पहुँच नहीं पाती थी। संघ के सदस्य इधर-उधर बिखरे हुए हैं। अकेले होने पर बजाने वाली सीटी स्वेटर के अंदर है। लेकिन किसी ने भी अब तक सीटी बजायी नहीं। भय एवं उत्कंठा सबको पकड़ लिए होंगे। धोड़े व याक गिलगिला होकर बिना हाव-भाव के चलते जा रहे हैं। घोडेवाले व कूली लोग आसमान की विभिन्न दिशाओं में देखकर शकुन देख रहे हैं।

षाजु और बिजु ठीक सामने है। कोई भी कुछ भी नहीं बोल रहा है। उनमें उसकी ताकत नहीं है। आशंका, उत्कंठा एवं कोई अज्ञात भय पावों को कमज़ोर बनाते हैं। चल नहीं पाते। या चलते-चलते नहीं चलता हो। दो कदम आगे रखने पर थड़कन बढ़ जाता है। 41 दिन का व्रत। हर रोज़ एक सौ आठ बार पंचाक्षरी जप। यात्रा तिथि निश्चित करते दिन से लगातार पैदल चलना, कम मात्रा में खाना, ज़रूरी, योगा, फिर भी क्यों यह चंचलता। आत्मविश्वास की कमी। बाहर अति सर्दी और वर्षा। कंबल के वस्त्र पराजय कबूल रहे हैं। षाजु के छाते के नीचे खडे हो दस्ताने हल्के-से हटाकर देखा। हथेलियाँ नीले रंगे के हो चुकी हैं। थोड़ी सी चाय मिल पाती तो...। गरम पानी में हाथ-पाँव डुबाकर रख सकते तो...। यहाँ पर यदि ईश्वर प्रत्यक्ष होकर वर माँगने के लिए कहा तो यहाँ की सर्दी हटाने के लिए विनती करता। दुर्बल चिंताओं से परेशान हुए मन को नियंत्रित रखा। यही है भक्ति, मनःधैर्य। सर्दी एवं बारिश में तितर-बितर होती ईश्वरीय आस्था बिना ढाँचे की है। मन को और प्रशोभित होना चाहिए। चिंताएँ निर्मल होनी चाहिए। ईश्वर नज़दीक है समझकर दर्शनार्थ निकल पड़ते हैं। विशालकाय समंदर पार करके, दण्डकारण्यों को लाघकर, आत्मपीड़ा की ज्वालामुखियों को लाँघकर चप्पल व पाँवों के घिस जाने पर भी योगी जानते थे कि ईश्वर अब और दूर पर खड़ा है। अपने पंचाग्निमध्ये तप कर लिया। जल में शीर्षासन में खडे हो बहुत संवत्सर ध्यानमग्न हुए थे। नंगे पाँव केवल गेरुए वस्त्र पहनकर कमण्डलु के साथ इस ओर गए संन्यासीगण एवं लामा कैलासनाथ के दर्शन किए। कठोर सहन की राहें पार करनेवाले एवं आत्मान्वेषणार्थ निकले संचारीगण भी प्रकृतिनिर्मित निधि शैल मुकुटों के दर्शन किए और लोग इसी तरह हर कदम में ईश्वर को देख पाते हैं। प्रत्येक यात्री की परिक्रमा राह अलग है। प्रत्येक आदमी द्वारा दर्शित कैलास एवं उनके अनुभव भी विभिन्न है। आपात्काल में भी देवी के चरणयुग्म का स्मरण करने पर मन की वर्षा थम सी गई। आसमान खुल गया। रास्ते में आगे रोशनी चलती रही। हथेलियों को आपस में रगड़ा। उँगलियों से तेज़ चलाया। हल्की सी गर्मी...।

एकदम आगे एक पुल के दोनों ओर पड़ी - रेत को जे.सी.बी. से हटा रहा है। पल भर में हाचु नदी का रफ्तार बढ़ने लगा। षेरजोन से होकर राक्षसलाल की ओर का प्रवाह।

तराई में दिखे गोपा व प्रार्थना पताकाएँ आह्लाद प्रदान किए। आसमान में विविध वर्ण की प्रार्थना पताकाएँ जैसे मेघ प्रत्यक्ष हुए हों। कैलास यात्रियों की गहरी प्रार्थनाओं के कारण मेघ दूर हट गए। लंबे अंतराल के बाद आसमान पुनः प्रदीप्त हुआ। (क्रमशः)

पुराण के अनमोल स्त्री रत्न और पवन करण - स्त्रीशतक में स्त्री विमर्श

डॉ.इंदु.के.वी

"अपनी कथाओं में आखिर /कितनी स्त्रियों का वध करेंगे आप/कथाओं में बाधित स्त्रियाँ/जिस दिन खुद को बाँचना/शुरू कर देंगी, कथाएँ बाँचना/छोड़ देंगी तुम्हारी"[1]

स्त्री की परम्परागत छवि से अलग एक नए रूप या पहचान के निर्माण को स्त्री विमर्श कहता है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज द्वारा निर्मित रूढी परम्पराओं से स्त्री की मुक्ति की आवाज़ बुलंद करना इसका लक्ष्य है। स्त्री विमर्श सिद्धांत के पीछे पुरुष सत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदंडों और अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की गहरी अंतर्दृष्टि है। स्त्रियाँ भी एक व्यक्तिबनकर समाज के केंद्र में आना चाहती हैं। स्त्री को एक व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना, शोषण और उत्पीडन के विरोध में संघर्ष करना, स्त्रियों से संबंधित विभिन्न समस्याओं पर विचार करना, स्त्री को अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान करवाना, स्त्रियों के साथ होनेवाले मानसिक और शारीरिक शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाना और उसे मानसिक रूप से सुदृढ़ बनाना आदि स्त्री विमर्श का प्रमुख लक्ष्य है। स्त्री विमर्श के सारे तत्त्व पवन करण की 'स्त्री शतक' काव्य संग्रह की कविताओं में सहज रूप में आ गए हैं।

स्त्री शतक की हर एक कविता स्त्री के प्रति नई समझ विकसित करने की कोशिश करती नजर आती है। पुराणों में अतीन्द्रिय शक्तिवाले वीर राजाओं का वर्णन है, उनकी अर्धांगिनियाँ भी है जिनके सौन्दर्य वर्णन कभी कभी कवि को असाध्य लगते हैं उन्हें शब्दों की कमी पड़ते हैं लेकिन उन स्त्रियों के अहसास कहीं नहीं होतीं। उनकी प्रतिक्रियाएँ नहीं होती। क्योंकि सब जानते हैं कि स्त्री की प्रतिक्रियाएं यदि वक्तपर समझ ली गईं होती तो दुनिया का इतिहास वह नहीं होता जो आज है। प्राचीन काल से स्त्री शरीर पर लिखनेवाले उसके मन पर अब तक नहीं पहुँच पाई है। स्त्री शतक के जरिए पवन करण अनुभूती की इन सच्चाईयों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। रामायण में सीता को वधू की शिक्षा देते समय भरतमुनी की पत्नी अनसूया ने उपदेश दिया था- "दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्तितः।/स्त्रीणामार्यस्व भावानां परमं दैवतं पित।।"[2]

अर्थात् पति बुरे स्वभाव का, कामी अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाव वाली नारियों के लिए श्रेष्ठ देवता के समान है। लेकिन इन देवों के लिए स्त्री का क्या महत्व है सीता माँ की कहानी स्वयं उसका साक्ष्य है। परीक्षा केवल स्त्रियों के लिए ही होता है। राजा भद्रायु की पत्नी कीर्तिमालिनी साक्षात् उमादेवी से प्रश्न पूछ रही है - "उमा अब आप ही मुझे बताएं/ परीक्षा लेने के लिए देव/ स्त्री-देह ही क्यों चुनते हैं/ यह तो सरासर देह-लोलुपता है/ जिसमें उनका साथ देने आप भी चली आती है"[3]

सती की सखी विजया भी इसी बात को लेकर सती से प्रश्न कर रही है कि शंका तो केवल पुरुषों के लिए ही होता है? स्त्री को इसका हक़ नहीं है- "स्त्री के लिए संदेह वर्जित है/ फिर वह चाहे जगदम्बा ही क्यों न हो/ मन ही मन विजया बुदबुदाती/ पुरुष चाहे देव हो या गण मान लेना चाहिए उसका कहा/ अन्यथा पुरुष पर शंका/ उसका सुख हर लेगी, झोंक देगी जीते जी उसे आग में।"[4]

शिव पत्नी को शक्तिरूपा माना जाता है। शक्तिरूपा होते हुए भी सती की स्थिति ऐसी है तो साधारण स्त्री के बारे में क्या कहें- "मगर इस बात पर/ घोर आश्चर्य भी होता है मुझे/ कि शक्तिरूपा होते हुए भी/ तुमने स्वीकार लिया सब/ तब मुझ सरीखी तुम्हारी शक्तिहीना सखियों की/ इस पुरुष जगत में क्या बिसात"[5]

इसी बात को लेकर मोर्वी भी चिंतित है। मोर्वी घटोत्कच की पत्नी है। मोर्वी नामक कविता में वह कहती है-

"एक स्त्री के पास उसे लेकर/ पुरुष के मन में उमड़नेवाली/ सभी जिज्ञासाओं के समाधान होते हैं/ मगर तुम्हारी तरह उसके भी पास/ स्त्री को अपने बारे में सोचने देने की उदारता नहीं होती।"[6]

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में स्त्री सिर्फ एक वस्तु है, संपत्ति है, सम्भोग और संतान की पूर्ती करनेवाली एक भोगवस्तु। राजा बलि की पत्नी विन्ध्यावली के शब्दों

में - "स्त्री का कोई भाग नहीं होता कहीं/सब पुरुष-भाग होता है/राजपाट हो या यज्ञ भाग/ यदि बलि ने मुझे भी/रखा होता अपने निर्णय में याद/तो वामन अवतार नहीं होता इतना आसान/विष्णु को करना पड़ता सामना मेरा भी"[7]

ब्रह्मा की अप्सराएँ भी पुरुष वर्चस्व के शिकार है। अप्सराएँ प्रेम करने के लिए नहीं, प्रेम प्रकट करने के लिए होती हैं। उनके शरीर घर की तरह नहीं होती हैं सराय की तरह है। माँ बनने के लिए नहीं बच्चे जनने के लिए होती हैं उनकी कोखें। ऐसा लगता है किसी ने पीठ उघाड़ पुरुषों को महिमा मंडित करते तमाम किस्सों पर कोड़े बरसा दिए हैं। यह स्त्री रूपा होकर भी एक स्त्री के गर्भ से जन्म न ले पाने की पीड़ा है जो उन्हें स्त्री के भीतर बांधे रखती है संकोच से। अप्सराएँ तो पुरुष के वर्चस्व को कायम रखने के लिए अपना प्रेम प्रकट करती हैं। सामाजिक नियम कहते हैं एक स्त्री द्वारा अपना प्रेम प्रकट करना अत्यन्त निंदनीय बात है।

स्त्रियों की वफादारी व धर्म परायणता अपने मालिक के प्रति जान न्योछावर करना ही है। यही उनका स्त्रीत्व है और यही शील। इंद्र की पुत्री जयंति कहती है.. देवताओं को स्त्रियां तब तक ही प्रिय हैं, जब तक वे उनकी अनुगता हैं, कामिनी हैं, पैर दबाती लक्ष्मी सी आज्ञाकारिणी और ऋषि-तपस्या भंग करती मेनकाएँ हैं। 'स्त्रीशतक की कौशिकी' (सरस्वती) कविता में शिवपत्नी पार्वती से महादेव के लिए नष्ट किये उनके अस्तित्व पर सवाल खड़ा करते हुए कौशिकी पूछती है कि वह क्यों शम्भु के विनोद का जवाब नहीं दे पाईं। क्यों नहीं कह पाईं कि महादेव, विनोद में ही सही, आप मुझे काली कहकर संसार की असंख्य स्त्रियों को प्रताड़ित कर रहे हैं। मगर आप तो शिव कथन से इतनी भयभीत हो गईं कि आपने अपनी सांवली त्वचा ही उतार फेंकी मेरे रूप में। आपने सोचा नहीं कि वस्त्र की तरह अपनी सांवली त्वचा उतारकर आपके अलावा संसार की कोई स्त्री कभी भी गौरी नहीं हो सकेगी। ये ठीक नहीं हुआ कि काया के पक्ष में अडिग रहने के स्थान पर कायांतरण का मार्ग चुना आपने। आज भी काली काया के नाम पर कितनी स्त्रियाँ अपमानित हो रही हैं। इस कविता में स्त्री की वेदना, दुख, पीड़ा, संत्रास, अपमान, उपेक्षा, ग्लानि, हताशा ही सामने नहीं आती बल्कि उसका मन चीत्कार कर उठता है जब उसे अहसास होता है कि स्त्रियों की दुस्थिति के लिए पुरुष ही नहीं स्त्री भी किसी हद तक उतनी ही दोषी है। पुरुष को संप्रीत करने के लिए वे अपने अस्तित्व को ही न्योछावर करते हैं।

पिता के लिए कभी पति के लिए स्त्री को अपने पसंदों को त्यागना पड़ता है। कभी समाज में पति के अस्तित्व को कायम रखने के लिए उसे अपना शरीर दूसरों को सौंपना पड़ती है। राजा महाबली की पत्नी है सुदेषणा। 'सुदेषणा' कविता की पंक्तियाँ- "और जब वह उसके पास अपनी कोखों में/ वीर्यदान ग्रहण करने आयीं राजस्त्रियों की/ रूप-सत्ता को पराजित कर रहा होता/ राजा बलि जैसे कई समर्थ/ इस ऋषि के दरवाजे के बाहर खड़े/ अपनी रानियों के बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे होते"[8]

सुदेषणा यहाँ वीर्य ग्रहण करने के लिए दीर्घतमा मामतेय नमक ऋषि के पास जाती है। दीर्घतमा मामतेय ऋग्वेद के दूसरे महत्वपूर्ण जन्मांध ऋषि है जिन्होंने एक नए देवता की कल्पना और एक सत्त विप्रा बहुधा वदन्ति (सत्य एक है अनेक रूपों में बोले जाते है) नामक ग्रन्थ की रचना की। वह ममता के पुत्र है जिन्होने वीर्यदान को ही अपना पेशा बना लिया था।

स्त्रीशातक की कविताओं के ज़रिये कवि पवन करण ने अनगिनत अप्रधान स्त्री पात्रों के विविध रूपों को पाठकों के सम्मुख रख लिया जिनमें प्रतिरोध करनेवाली स्त्रियों की भी कमी नहीं हैं। इंद्र की पत्नी शची का उल्लेख दो तीन कविताओं में मिलता है। विश्वाची अप्सरा से कवि कहता है- "राजमुकुट धारी बाज में तुम अपनी देह बचाने की खातिर/शचि की तरह लड़ना"[9]

इंद्र की पत्नी शचि जिसने देवताओं के आग्रह के बावजूद इन्द्रासन पर सवार नहुष की अंकशायिनी बनने से इनकार कर दिया था। शची की पुत्री जयन्ती से भी कवि कहता है- "जयंती, बूढ़े शुक्र की अंकशायिनी होने से पहले/ तुमने खुद के बारे में नहीं सोचा/ तुम्हें पिता की बात मानने से पहले/ माँ शचि एक बार भी याद नहीं आई/ नहुष से खुद को बचाने में सफल शचि तुम्हें पितृ आज्ञा न मानने की सलाह देती"[10]

जयन्ती इंद्र और शचि की पुत्री जिसे उसने बलि से धरती हथियाने के लिए शुक्र को सौंप दिया दिया था।

अधिकाँश साहित्यिक रचनाओं में और फिल्मों में आज भी प्रेम की बात पहले पुरुष द्वारा स्त्री से बताना सही मानते है। एक स्त्री अपनी मन की बात खुलकर बताना

उनका नाक कटवाना समझ जाती है। कसी की पुत्री वज्रामणी(शूर्पनखा) के साथ भी यही हुआ था। लेकिन अपने मन की बात खुलकर बताने में वह हिचकती नहीं- उसके प्रेम में बैरों में बेड़ियाँ पहनाने की/कोशिश करनेवाले सुझावों से कहे/ नहीं मैं इसे नहीं बाँधूंगा/ दूँगा इसे [illegible][11]

किसी को पुत्रवान बनाने के लिए अब वह किसी की पत्नी बनने के लिए भी तैयार नहीं। घुश्मा नामक कविता की पंक्तियाँ- "नहीं तुम्हें पुत्रवान बनाने के लिए/ मैं तुम्हारी दूसरी पत्नी बनने को तैयार नहीं कतई"[12]

एकचक्र की प्रेयसी मालिनी भी मय के वार्षिक विक्रयोत्सव में रैक्व ऋषि द्वारा स्वर्ण के बदले उसके खरीदे जाने को मानने से इनकार करते हुए कहती है - "तुमने भले ही अपने विलासभवन की/ सौन्दर्यभामियों के लिए गढ़ा नियम/ रैक्व के सामने रख, उसे हताश कर दिया हो/ मगर मेरा अप्रतिम स्वाभिमान उसे/ मानने को तैयार नहीं एक चक्र"[13]

मय के वार्षिकोत्सव में मालिनी तो प्रतिरोध कर सकी लेकिन कितनी स्त्रियों को वहां एक उपभोग वस्तु के रूप में विक्रय किया होगा। क्या ऐसा ज़माना आयेगा कि हर स्त्री को कम से कम अपने शरीर में अधिकार होगा।

संक्षेप में कह सकते है कि स्त्री शतक की कविताओं में स्त्री के विविध रूप और भाव के दर्शन होते हैं। भारतीय परम्परा में फँसी स्त्री को पुराणों से उठाकर आधुनिक परिवेश में निष्पक्ष दृष्टी से रखने का उनका प्रयास अत्यंत सराहनीय है जो पठकों को सोचने के लिए मजबूर करते है। पुरुष वर्चस्ववादी सामाजिक ढाँचे में विभिन्न प्रकार के शोषण सहकर, उसे अपनी नियति समझकर जीनेवाली अनेक स्त्रियाँ आज भी हमारे समाज में हैं। पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री को एक उपभोगवस्तु के रूप में ही देखना चाहते हैं। नारी की सबसे बड़ी समस्या उसका शरीर है। उसे संस्कृति की प्रहरी बनाकर उस शरीर को शुद्ध रखना सबसे बड़ा मूल्य माना जाता है। पुरुष केन्द्रित समाज अपनी सुविधा और अपनी शर्तों पर तैयार किये नैतिक मूल्य एवं आध्यात्मिक मूल्यों की नियमावलियों को पालन करने का दायित्व स्त्री पर निर्भर है। ये बिलकुल स्त्रियों के खिलाफ है और उनके शोषण का हथियार है। आज स्त्रियाँ इस षड्यंत्र को पहचानने लगी है। लेकिन केवल स्त्री की मानसिकता में बदलाव आने से कुछ नहीं होगा। इसकेलिए सामाजिक परिवर्तन अनिवार्य है। आशा करती हूँ कि आगामी पीढी इस दर्द को समझ सकें।

"एक स्त्री के लिए स्त्री होना/हर काल में होता है कठिन/ उसके लेखे में तो हमेशा कुर्री पक्षी की भांति/रुदन करना ही होता है बदा"[14]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पवन करण (2019), धुन्धुली, स्त्री शतक(प्रथम खंड),भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ. सं-171
2. वाल्मीकी रामायण, अयोध्याकाण्ड-116,24,29
3. पवन करण (2019), कीर्तिमालीनी, स्त्री शतक(प्रथम खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.51
4. पवन करण (2019), विजया, स्त्री शतक(प्रथम खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.58,59
5. पवन करण (2019), विजया, स्त्री शतक(प्रथम खंड), भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.58,59
6. पवन करण (2019), मोर्वी, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.132,133
7. पवन करण (2019),विन्ध्यावली, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ सं.199
8. पवन करण(2019), सुदेषणा, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.30,31
9. पवन करण (2019), सुलोचना, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,स्त्रीशतक(प्रथम खंड) पृ सं-42,43
10. पवन करण (2019), जयन्ती, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.24.25
11. पवन करण (2019), वज्रामणी, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.36,37
12. पवन करण (2019), घुश्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली स्त्रीशतक(प्रथम खंड) पृ सं.175
13. पवन करण (2019), मालिनी, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.22,23
14. पवन करण (2019), कयाधू, स्त्रीशतक(प्रथम खंड) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ सं.202

असिस्टेंट प्रोफसर
हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्यालय

ऊर्मिला शिरीष की कहानियों में चित्रित अभिशप्त वृद्धावस्था

बिजी.बी

मानव जीवन एवं समकालीन समाज के विविध पक्षों का अवलोकन करने के साथ समाज में व्याप्त शहरी संस्कृति को अपनी कहानियों में सच्चे अर्थों में अभिव्यक्त करने वाली सकलानीन महिला कथा लेखिका हैं उर्मिला शिरीष। मानवीयता उर्मिला जी की कहानियों की केंद्र बिंदु है। आजकल हिंदी साहित्य में कई विमर्श प्रचलित हैं, नारी विमर्श, दलित, किन्नर, आदिवासी, किसान विमर्श आदि। लेकिन अब वृद्ध विमर्श के बारे में चर्चा की जा रही है। उसपर हिंदी साहित्यकारों ने अपनी कलम चलाई। वृद्धों की सामाजिक एवं मानसिक संवेदनाओं को साहित्यकारों ने विशेष रूप से प्रस्तुत किया है, इनमें प्रमुख है उर्मिला शिरीष। 'निर्वासन' 'प्रतीक्षा', हैसियत, 'बँधो न नाव इस ढाव बँधु', 'अब और नहीं' आदि कहानियाँ अन्य कहानियों की अपेक्षा उर्मिला जी ने वृद्धों एवं बुजुर्ग वर्गों को अधिक प्रधानता दी है।

मानव विकास की सात अवस्थायें हैं गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था। इन सभी अवस्थाओं की अपेक्षा वृद्धावस्था अधिक समस्याजनक होती है, क्योंकि वार्धक्य में मनुष्य की शरीरिक एवं मानसिक क्षमताएँ कमज़ोर होने लगती हैं। नींद की कमी, स्वाद नष्ट होना, आँखों का छँछली, मृत्यु थय, आर्थिक शिथिलताएँ आदि उनके लिए अभिशप्त प्रतीत होने लगते हैं। सामान्यतः वृद्धावस्था कोई स्वांग नहीं करना चाहती है, यह हरेक मानव जीवन की अनिवार्य अवस्था है।

एक समय था, माता-पिता की सेवा देवताओं की उपासना से भी अधिक श्रेष्ठ मानी जाती थी, आज माता पिता बेटों की दया में पलनेवाले दीनहीन उपेक्षित निरीह प्राणी मात्र है। संयुक्त परिवार समाज की पूर्ण मुख्य इकाई मानी जाती है। आर्थिक जटिलताओं एवं आधुनिक दबाब के कारण लोगों की व्यस्तता हर दिन बढ रही है ऐसी स्थितियों में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। एकल परिवार के परिप्रेक्ष्य में उठा एक प्रमुख प्रश्न है वृद्ध - माँ - बाप क्या करे? किसके साथ रहे? किसपर आश्रित रहें, कहाँ जाएँ? किससे स्नेह करें? अपनी सेवा शुश्रूषा के लिए किस पर निर्भर रहें अपनी पूरी आवस्थकताओं की पूर्ती के लिए कहाँ जायें एक वृद्ध दंपती की कहानी है 'प्रतीक्षा'।

'प्रतीक्षा' जिनके दोनों बेटे अपने करियर बनाने के चक्कर में माँ - बाप को छोड़ चले जाते हैं। बडा बेटा डॉक्टर बनकर नौकरी के लिए चला गया, और छोटा बेटा एम.बी.ए करके मुंबई में सेटिल हो गया था। वह माँ-आप अकेले अपने घर में जीवन बिताते हैं, वे अपने बच्चों की याद में जीवन काटते हैं। "जीवन कैसे सूखे पत्तों की तरह उडकर एक किनारे से दूसरे किनारे पर जा चिपकता है।" बेटों का व्यवहार पिता को गहरा आधात पहुँचाता है। पिता की मृत्यु पर बेटे आते हैं, लेकिन माँ को उनके साथ न ले जाते।

जब पति की मृत्यु हुई तब माँ घर में बिलकुल अकेली पड़ जाती है। वे अपने बच्चों और पति की स्मृतियों में खोई रहती है। उनका जीवन सूखे पत्ते की तरह उडकर एक किनारे पर जा चिपकता है। प्रस्तुत कहानी में उर्मिला जी ने बूढे-माता-पिता की शून्य यात्रा का जीवन्त दस्तावेज़ प्रस्तुत किया है।

"निर्वासन' ऐसी एक वृद्ध त्रासदी की कहानी है जिसमें अपना पूरा जीवन अपने बेटों का भविष्य संवारने में लगा ये एक पिता की कथा पिरोयी है। पर घोट में जाते ही उसके बेटों ने स्वयं को अलग कर लिया। अपना घर छोडकर ऐसे स्थान पर चले जाना वहाँ उसे भीख माँगकर अपना जीवन यापन करना पड़ा। "कोई वे और होता तो पागल हो जाता था, आत्महत्या कर लेता, मगर नहीं वह पूरी तरह सक्रिय थे; सजग थे, उनकी चेतना, उनकी बुद्धि एक दम जाग्रत थी।"

वर्षों के बाद जब भीख माँगते हुए वृद्ध पर उसके पोते की नज़र पडती है। पोता जब अपने दादा के प्रति संवेदना प्रकट करता है। जो उसके पिताजी उसको छोडकर अपने भविष्य की ओर देखने के लिए कहता है, वे कहते हैं -

"पागल हो गये हो क्या? .... अपना भविष्य देखो। अतीत की मुर्दा बातों को मत उखाड़ो।" लेकिन पोता अपने दादा को एकांतवास से बाहर खींच लाने में सफल हो जाते हैं। समाज में ऐसे अनेक माँ बाप-होते हैं, अपनी संतान के भविष्य की चिंता में वे जीवन गँवा देते हैं, लेकिन बच्चों द्वारा उनकी उपेक्षा ही होती हैं, इस तथ्य को उर्मिला जी ने यहाँ उजागर किया है।

उर्मिला जी की एक और प्रिय कहानी है 'बाँधो ने नाव इस ठाव-बंधु।' इसकी भूमिका में ऐसा व्यक्त किया है - "यह भावनाएँ, संवेदना और चरित्र-तीन चीज़ें एक साथ चल रही हैं। रिटयरमेंट के बाद उन्होंने अपना सब कुछ प्रिय बेटों को बाँट दिया था, यह सोचकर कि उन्हींके साथ स्वयं को जोड़कर काम करते रहेंगे। बेटे बाहर का काम देखेंगे, वे अंदर की व्यवस्था संभालने लगें। लेकिन कुछ समय बाद ही उन्होने महसूस किया कि वे वहाँ कहीं नहीं है। उनका काम करने का ढंग किसी को पसंद नहीं आता। उनका मझला बेटा उनके साथ आकर रहने लगा था, फिर घर में कलह शुरू हो जाता है, ससुर बहु के बीच। उनका बडा बेटा उन्हें गाँव लेकर जाने को कहते हैं, लेकिन तुरंत उनकी मृत्यु होती है। अपने हाथों से उनको अग्नि को समर्पित किया है। ये उनके मन में या हरेक पिता के मन में बड़ा आघात है। उन्होंने सोचा "दूसरों के यहाँ होनेवाली मृत्यु के बारे में सुनकर कितने हलके ढंग किया करता था, वह बल्कि मज़ाक बना करता था, मगर आज जब स्वयं पर गुमर है।" इसमें जीवन का शाश्वत सत्य चित्रित हुआ है।

संयुक्त परिवार के बडे बूढों का आत्मालाप दर्शाती कहानी "हैसियत' में वृद्ध व्यक्ति को अपने आस्तित्व को या अपनी प्रासंगिकता को बनाया रखना पड़ता है। वे घर के दादाजी अन्य दुखी व निराश होकर विषाद और क्षोभ के कारण पलायन कर लेते हैं। किंतु बाहरी दुनिया में असुरक्षा की भावना उन्हें पुनः घर लौटने के लिए मज़बूर-करती है। दादाजी इस तरह से सोच विचार में डूबे रहते हैं कि "अपने घर में उनकी हैसियत पराये लोगों की तरह रह गई है, "घर में भाई, बेटा, बहु सब अपनी मर्ज़ी के मालिक हैं, उसने सोचा उनका अपना तो कोई घर है? बेटा के बंगला भाई के नाम है। उनको अपना मकान बच्चों के नाम एफ.डी.और हैं, बीमा पॉलिसी है। उनके नाम से तो सिर्फ...बैंक से कर्ज़ा लिया हुआ है, जिसपर उनके हस्ताक्षर करवा लिये थे।"[4] अंत में वे घर लौटते हैं तब उनके भाई उनकी तलाश में थे। वे अपने घर में उन्हें जगह देने के लिए तैयार खडे थे। दादाजी अपने घर में अजनबी होने के कारण ही पलायन करने तैयार हो जाते हैं। यहाँ दादाजी का आत्मालाप देख सकते हैं। वृद्धों की मानसिकता को उकेरने में उर्मिला जी सफल हुई है।

आज नई पीढ़ी पैसों के पीछे भाग रही है। अपने संस्कारों तथा सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को भूलती जा रही है। माँ-बाप अपने बच्चों को विभिन्न प्रकार की आकाक्षाएँ मन में संजाऐ अपने-बच्चों को पाल-पोषकर बड़ा करते हैं। लेकिन वे वृद्धावस्था में बच्चों में बाप से अलग हो जाते हैं। उपेक्षा का अनुभव उन्हें मानसिक रूप से पीडित करते हैं। बीमारी में वृद्ध-माँ-बाप को अकेला नहीं छोड़ा जाना चाहिए। इस अवस्था में उनको सेवा करना अपना कर्तव्य है, क्योंकि वृद्धावस्था द्वितीय बाल्यावस्था है। अपनी सेवा-शुश्रूषा के लिए-वृद्ध लोग बच्चों की भाँति पराश्रयी हो जाते हैं।

वृद्ध माँ- बाप काफी अनुभवी होते हैं, उनको मनोरंजन की समुचित व्यवस्था कर देनी चाहिए पास पडोस में कहें, दुख, दर्द पूछना चाहिए, घर की समस्याओं की चर्चा करनी चाहिए तथा, माँ बाप को उनकी सुनना चाहिए, उनके साथ पूजा बंधन स्थलों पर जाना और अन्य मनपसंद जगहों पर जाना उनके लिए हर्ष की बात होती है।

निष्कर्ष रूप से कहें तो उर्मिला जी ने इन कहानियों के परिप्रेक्ष्य में अभिशप्त वृद्धावस्था से पीडित बुजुर्गों की दुर्दशा को संवेदनशील ढंग से यहाँ प्रस्तुत किया है।

सहायक ग्रंथ

1. प्रतीक्षा - उर्मिल शिरीष 'निर्वासन' - भारतीय ज्ञानपीठ - 2003, पृ.सं. 60
2. 'निर्वासन' - उर्मिला शिरीष, भारतीय ज्ञानपीठ - 2003, पृ.सं.72
3. निर्वाशन - उर्मिला शिरीष, भारतीय ज्ञानपीठ - 2003, पृ.सं. 71
4. हैसियत - उर्मिला शिरीष, 'निर्वासन', भारतीय ज्ञानपीठ, पृ.सं. 56

शोधार्थी
यूनिवर्सिटी कॉलेजतिरुवनन्तपुरम, केरल

अल्पना मिश्र के कथा साहित्य में कामकाजी नारी

श्यामलतिका.एस

आज के ज़माने में नारी हर क्षेत्र में मर्दों के साथ नौकरी कर रही है और वह घर व दफ्तर के कामों को सही सलामत निभाती भी है। नारी शिक्षा की भी इसमें महत्वपूर्ण स्थान है। नौकरी मिलने पर भी नारी को पूर्ण रूप से मुक्ति नहीं मिली है। वह पहले से भी संघर्षरत है। घर के अंदर जिन समस्याओं को झेलकर राहत की साँस लेने के लिए घर से बाहर अपनी प्रतिभा के बलबूते वह निकल गयी तो उसे बाहरी दुनिया में उससे भी ज़्यादा समस्याओं से जूझना पड़ा। नौकरी मिलने पर नारी में आत्म विश्वास बढ़ गयी , उसको अपने होने का एहसास होने लगी। अब वह अपने शारीरिक मेहनत के साथ-साथ बुद्धि का इस्तेमाल भी करके परिवार व समाज के लिए मददगार बन गयी। इन सभी सकारात्मक परिवर्तन के साथ ही कामकाजी महिला के समक्ष कई प्रकार के समस्याएं आने लगी - "कामकाजी महिलाओं को घर और बाहर दोनों जगहों की ज़िम्मेदारियाँ संभालनी पड़ती हैं इसलिए उनकी दिक्कतें भी दोगुनी होती हैं। महानगरों में नौकरी करनेवाली मध्यवर्गीय महिला की त्रासदी किसी सज़ा से कम नहीं। सुबह जल्दी-जल्दी घर के काम, पूरे दिन ऑफिस में पिसना , बसों में धक्के खाना, भीड़ से अश्लील फिकरे सुनना , शारीरिक उत्पीडन सहना , शाम को फिर घर-गृहस्थी। घरेलू महिला के काम को तो कोई महत्व दिया ही नहीं जाता है , कामकाजी महिला के बोझ को जानबूझ कर भुला दिया जाता है। आज महिलाएँ जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं और अपनी सफलता के परचम भी लहलहा रही हैं लेकिन हर तरफ उन्हें सिर्फ दिक्कतों का ही सामना करना पड़ता है। और सबसे दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह है कि कामकाजी महिलाओं की समस्याओं को कोई समझने को तैयार नहीं है।"[1] नौकरीपेशा नारी की इन दुविधाओं का सही अंकन समकालीन लेखिका श्रीमती अल्पना मिश्र ने अपने कथा साहित्य में अभिव्यक्त किया है।

आदमी के सोच- विचार में भी काफी बदलाव आ गए हैं। जो लोग नारी के घर से बाहर पाँव रखने की अनुमति न देते थे , वही आज अपनी बेटी-बहुओं , पत्नियों को पढ़ाने व नौकरी करने की बात को स्वीकारने लगे। लेकिन इस बदलाव के पीछे का मकसद अक्सर पैसा ही है। पहले नारी दहेज के रूप में संपत्ति लानेवाली थी लेकिन आज वह जीवनभर पैसा कमानेवाली मशीन बन गयी है। 'अन्हियारे तलछट में चमका' उपन्यास की बिट्टो की माँ उनके गाँव के पहले ग्रेजुएट महिला थी और प्राइमरी पाठशाला की नौकरी से जो तन्ख़्वाह उन्हें मिलती थी उसका पूरा फायदा उनके पति को थे। कामकाजी होने पर भी अपनी कमाई पर उसका कोई अधिकार नहीं है। अपनी ज़रूरतों के लिए उसे पति के सामने भीख माँगनी पड़ती है। बिट्टो की नौकरी के पैसे से ही उनके साथी शचीन्द्र का भी गुजारा चलता है। 'मुक्तिप्रसंग' कहानी के डॉ साहब भी पत्नी की तन्ख़्वाह को सीधे उनके खाते में डालने का काम करते है जिससे पत्नी तनिक भी संतुष्ट नहीं है। 'इस जहाँ में हम' कहानी की मिसिस बगड़वाल को भी कामकाजी होने के बावजूद भी उनके व घर के सारे खर्चों के बारे में हर दिन सोने के पहले पति द्वारा रखे गए किताब में लिखनी पड़ती है। हफ्ते में पति द्वारा उसका मूल्यांकन होता है और पत्नी की लापरवाही से निर्धारित खर्च से ज़्यादा हो गया तो पति कभी सुननी पड़ती है।

सहकर्मचारियों के बुरे व्यवहार से भी कामकाजी नारी तंग हो चुकी है। 'मेरे हमदम मेरे दोस्त' कहानी की सुबोधिनी अपने साथ काम करनेवाले पुरुष कर्मचारियों के बर्ताव से परेशान है जबकि उन्हें खुद के जीवन में भी काफी तक्लीफें हैं। सुबोधिनी तलाकशुदा नारी है और अपने पूर्व पति की दुश्मनी को भी झेलनी पड़ती और साथ में बेटी को सुबोधिनी से छीनने की जंग भी शुरू कर दी। इस नए

ऑफिस में सुबोधिनी के आते कुछ ही दिन हुई थी लेकिन उनके तलाक की ख़बर सबके पास पहुँच गए थे। दफ्तर के गोपाल बाबू व शर्माजी तो नारी कर्मचारियों के प्रति सहानुभूति जताकर उनकी निजी बातों को जानने में रुचि रखनेवाले थे और सुबोधिनी की कहानी जानकर उनसे भी सहानुभूति जताने के नाम पर उनके पीछे पड़ जाते हैं तो वह उन्हें इसका कोई अवसर ही नहीं देती है। बड़े बाबू के प्रति जो सम्मान उसे थी वह भी बाद में बदल गयी और सभी के सही रंग जानकर सुबोधिनी उनकी बातों पर किसी को भी हस्तक्षेप करने का अवसर नहीं देती है और सभी को एक दूरी पर रखती है। 'इस जहाँ में हम' कहानी की मिसिस बगड़वाल भी पुरुष सहकर्मचारियों के भेदभाव को झेलती है। मिसिस बगडवाल को पुरुष कर्मचारियों के साथ कंप्यूटर लर्निंग प्रोग्राम के लिए जाना पड़ता है। कार में नौटियालजी मिसिस बगड़वाल को आगे बैठने की सुविधा देकर बाकी मर्दों को पीछे बिठाते हैं। वर्माजी को यह अच्छा नहीं लगता है और वे सोचते हैं - "नौकरी करेंगी साथ में, जाएँगी साथ में, पैसा लेंगी बराबर का और साथ बैठने में सती - सावित्री बनने लगेंगी। 'या फिर' नौकरी क्यों कर रही हैं? इतने नखरे हैं तो घर बैठें।"[2]

घर व दफ्तर के बीच के सफ़र में कामकाजी नारी को कई लंपट आदमियों का सामना भी करना पड़ता है। बस की भीड़ में ऐसे कई आदमी होंगे जो जानबूझकर नारियों के शरीर में टकराने , उनको छूने जैसे कामुक वृत्तियों के निर्वाह से अपने आप खुश होते हैं। 'मुक्तिप्रसंग' कहानी की नायिका के सामने भी एक ऐसे बूढ़े व्यक्तिबैठते हैं जिन्होंने नायिका से बातें करने की कोशिश के साथ नायिका के देह से सटकर रहने लगे। कभी कभी नारी को नौकरी के लिए घर से दूर किसी दूसरी जगह पर जाकर रहनी पड़ती है। अक्सर यह जगह उनके लिए नया व अजनबी होते हैं। ऐसे में उसे रहने के लिए वहाँ एक अच्छे व सुरक्षित जगह ढूँढना मुश्किल है। 'गैरहाज़िरी में हाज़िरी' कहानी की नायिका के लिए भी यह मुश्किल था कि उस अनजान शहर में उसके पैसों के हिसाब से एक स्वस्थ घर ढूँढना। कभी लोग एक अजनबी , अकेली लड़की को घर देने को तैयार नहीं है , तो कभी पैसे बढ़ने के कारण घर नहीं ले सकते , कभी दूसरे लोगों के साथ घर बाँटने की नापसंदगी के कारण तो कभी घरवालों के शर्तों पर ऊब होकर घर नहीं ले सकते। अपनी नौकरी ईमानदारी से निभानेवाली औरतों पर हमले की संभावना भी है। 'अस्थि फूल' उपन्यास के वकील संध्या पर हाई कोर्ट से आते वक्त हमलावरों ने गोलियाँ इसलिए चलाई गयी क्योंकि संध्या ने ह्यूमन ट्रैफिकिंग व सेक्स रैकटों के विरुद्ध केस लड़ रही थी।

कभी-कभी घर व दफ़्तर के बीच की भागदौड़ में नारी को खुद के बारे में सोचने का समय भी नहीं मिलती है। इन सब मुश्किलों के होते हुए भी नारी अपनी नौकरी नहीं छोडती है। इसके बारे में 'चीन्हा - अनचीन्हा' कहानी की नायिका यों बता रही है कि- " मेरी नौकरी मुझे वापस लौटने की इजाज़त नहीं दे सकती थी। तमाम ऐसी ज़रूरतें भी थीं जिनके लिए मुझे नौकरी से चिपके रहना था।"[3] उसने अपने जीवन को इसी नौकरी के बलबूते पर मज़बूत बनाना चाहती है और इसे मिलने के लिए उसने कितनी मेहनत व संघर्ष की थी उसके आगे ये मुश्किलें कुछ भी नहीं है। जीवन के तमाम मुसीबतों का सामना करने की शक्तिनारी ने अर्जित की है। घर के चारदीवारी से बाहर की दुनिया में अपनी जगह उन्होंने बनायी है और उसे संभालकर रखने की काबिलियत भी उसमें आ गई है। श्रीमती अल्पना मिश्र भी अपनी रचनाओं के ज़रिए इसका समर्थन कर रही है।

संदर्भ :

1. कामकाजी महिलाएँ वास्तविक स्थिति, डॉ. मीनाक्षी श्रीवास्तव, पृ. सं. 13-14
2. छावनी में बेघर, अल्पना मिश्र, पृ. सं. 103
3. स्याही में सुर्खाब के पंख, अल्पना मिश्र, पृ. सं. 68-69

शोधछात्रा, हिंदी विभाग
महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

मुक्तिबोध की कविता में आधुनिकता का स्वर

डॉ. रीना कुमारी वी.एल.

आधुनिकता एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का नाम है ,जिसमें प्राचीन परंपराओं के स्थान पर नवीन मान्यताओं को स्थान दिया गया है। अपने युग को अभिव्यक्त करने के लिए रचनाकार अपने -अपने दृष्टिकोण को अपनाता है। रचनाकार का अपना दृष्टिकोण उसकी आधुनिक दृष्टि है और आधुनिकता उसकी इस दृष्टि के अनुरूप आचरण को कहा जा सकता है। रचनाकार का मुख्य उद्देश्य युग के यथार्थ को मानव जीवन युक्त स्वरूप देना है।

मुक्तिबोध आधुनिक साहित्य के सजग कलाकार थे। उनको कवि के रूप में संस्कार देने का कार्य उनकी जिज्ञासावृत्ति, विविध मुखी परिस्थितियाँ और मार्क्सवाद की वैचारिक यात्रा ने किया। उनका आधुनिकता- विषयक चिंतन दो संदर्भों में प्रतिबिंबित होता है - साहित्यिक व सामाजिक संदर्भ में ।उन्होंने आधुनिक भावबोध को नई कविता की आत्मा माना । मानवीयता से ओत प्रोत उनकी विश्व दृष्टि गरीब व अभावग्रस्त आदमी के चारों ओर घूमती रही ।

अपने युग के विराट सत्य को समेटे मुक्तिबोध का पहला काव्य संग्रह चाँद का मुंह टेढ़ा है ' जब प्रकाशित हुआ तब वे अचेतावस्था में थे । इस काव्य संग्रह की कविताओं के बारे में इंद्रनाथ मदान जी ने लिखा है- " इनकी कविता का अंदाज़ और बयान और है जिसे दोहराया नहीं जा सकता। इनकी कविताओं में अनेक स्वर हैं - दहशत का है, खौफ का है, घृणा और स्नेह का है, अकेलेपन का है ,साथीपन का है , टूटने और जुड़ने का है । इस तरह इनकी कविता में मानसिक तड़पन, अकुलाहट और छटपटाहट है और होने में तनाव है, सादगी और टेढ़ापन है , सरलता और जटिलता है, आस्था और अनास्था है, शंका और विश्वास है।"[1] मुक्तिबोध जिस परिवेश में जिए वह अत्यंत जटिल एवं परिवर्तनकारी था । उन्होंने दो युगों को अपने जीवन काल में जिया- आज़ादी के संघर्ष का काल और आज़ादी के बाद का काल।

मुक्तिबोध अपने द्वितीय काव्य संकलन 'भूरी भूरी खाक धूल में' समाज की विभिन्न समस्याओं पर नज़र रखते हुए पूंजीवादी शोषण को मूल हेतु मानते हैं । इसके लिए उन्होंने पूंजीवादी साजिशों के शिकार हो रहे निम्न मध्य वर्ग और सर्वहारा वर्ग के जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। समकालीन जीवन के अंतर्विरोधों, तनावों एवं चिंताओं के चित्रण के साथ जीवन की समग्रता को कविता में आत्मसात कर लेने का लगातार प्रयास भी इन कविताओं में मौजूद है । अतीत और भविष्य को वर्तमान के साथ एक सूत्र में पिरोने की अद्भुत क्षमता के कारण ये कविताएँ सर्वथा प्रासंगिक हैं ।

मार्क्सवादी सिद्धांतों पर दृढ़ विश्वास रखनेवाले कवि मुक्तिबोध भारत में भी समाजवादी समाज की स्थापना के अभिलाषी थे । यही अभिलाषा उनकी कविताओं का प्राण तत्व है ।' भविष्य धारा ' कविता में कवि ने फेंटेसी के सहारे पूंजीवादी व्यवस्था के अत्याचारों का पर्दाफाश किया है । इस कविता में एक वैज्ञानिक है जो पूंजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन के लिए समीकरण का जो सूत्र आविष्कार करता है, जिन्हें पूंजीवादी लोग चुराकर जला देते हैं । कवि का पूरा विश्वास है समीकरण का सूत्र पुनः आविष्कृत होगा और पूंजीवाद का नाश ज़रूर होगा - "तुम्हारा अंतिम दिन आ रोक आ रहा/दुष्ट भाव का सर्प हृदय से कण्ठ/कण्ठ से आगे मस्तिष्क कोरा में घर बना

रहा/तुम्हें मृत्यु का अक्षर सफेद दिख रहे/क्षितिज पर स्पष्ट /व बड़े-बड़े।"[2]

मुक्तिबोध ने बुद्धिजीवी वर्ग पर व्यक्तिवादी और पूंजीवादी वैचारिकता का प्रभाव स्वीकारा है। यह वर्ग तब और घातक हो उठता है जब अपनी वैचारिकता और रचना दोनों में व्यक्तिवाद को स्थापित करने लगता है । यह वर्ग आत्मसंघर्ष में लीन है, सुविधाभोगी और समझौतापरस्त है।मुक्तिबोध ने मध्य वर्ग के प्रतीक ब्रह्मराक्षस के आत्म संघर्ष का चित्र यों खींचा है- " पाप छाया दूर करने के लिए/ दिन-रात स्वच्छ करने / ब्रह्मराक्षस

घिस रहा है देह/ हाथ के पंजे, बराबर/ बाँह- छाती - मुँह छपाछप/ खूब करते साफ,/ फिर भी मैल/फिर भी मैल।"[3]

मुक्तिबोध की सार्थकता इसमें है कि उनकी कविताएँ तत्कालीन समाज और समसामयिक दुनिया की समस्याओं का जीवंत साक्ष्य हैं। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चित्रण के सहारे व्यवस्था के प्रभाव से हमारे सांस्कृतिक स्तर पर हुए विघटन पर विचार करते हैं । 'सूरज के वंशधर' कविता में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के जनसाधारण की दुर्दशा का चित्रण है - "सूखी हुई जांघों की लंबी-लंबी अस्थियाँ/हिलाता हुआ चलता है /लंगोटीधारी यह दुबला मेरा हिंदुस्तान/रास्ते पर बिखरे हुए/चावल के दानों को बौनता है लपककर/मेरा सांवला इकहरा हिंदुस्तान/सटर-पटर सामान को धरे हुए शीर्ष पर/रोते हुए बच्चों को कंधे पर बिठाए हुए/ज़िंदगी ढोता है बहादुर हिंदुस्तान।"[4]

यह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज की वास्तविक तस्वीर है । इसमें गरीबी के कारण अस्थि - पंजर हो रहे भारतीय जन साधारण तथा आर्थिक अभाव के कारण भोजन की तलाश में भटकते रहनेवाले हिंदुस्तानी निम्न वर्गों का जीवंत चित्रण है।

मुक्तिबोध सही अर्थ में राजानीतिक कवि हैं। उन्होंने राजनीति को विषय बनाकर कई कविताएँ लिखी हैं। 'इस नगरी में' कविता राजनीतिक विघटन का सही दस्तावेज़ है। इसमें पूंजीवादी व्यवस्था के प्रभाव से मनुष्य में हुए बदलाव को हम देख पाते हैं। आज़ादी की लड़ाई के दौरान भारत के राजनीतिक नेता जनता के साथ थे। जनता के हितों को वे प्रमुखता भी देते थे। जनता उनपर विश्वास करती थी। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वे जनता से हटकर अपने ही स्वार्थों में लिप्त रहे हैं। कवि ने राजनीतिक नेताओं को खद्दर वर्दी पहने जनरल डायर कहा है गांधीवाद इन नेताओं का सबसे बड़ा हथियार है - "इस नगरी में प्रहरी पहनते हैं धुएँ के लंबे चोगे /साजिश के कुहरे में डूबी ब्रह्मराक्षसों की छायाएँ/ गांधीजी की चप्पल पहने घूम रही है।"[5]

आधुनिकता के प्रति नितांत निजी दृष्टिकोण मुक्तिबोध के चिंतन में देखने को मिलता है। उन्होंने लिखा है कि समाज के विकास के साथ साथ मनुष्य की मनोवैज्ञानिक समृद्धि, आंतरिक तथा बाह्य स्वाधीनता और मानवीय दृष्टिकोण का विकास होता चला जाता है । समाज की व्यवस्था ने आदमी के जीने के प्रति सोच को ही बदल डाला। इस व्यवस्था का शिकार आदमी मानवीय मूल्यों को ताक पर रखकर प्रतिष्ठा तथा सफलता की आँख से व्यक्ति को देखना सीख गया है - "उन्नति के क्षेत्रों में प्रतिष्ठा के क्षेत्रों में / मानव की छाती की,/आत्मा की/ प्राणों की/ सोंधी गंध/ कहीं नहीं, कहीं नहीं।"[6]

कवि का पूरा विश्वास है कि तमाम बुद्धिजीवी वर्ग पूंजीपतियों के गुलाम बनकर मर नहीं गया है , उनमें से कुछ भी आत्मा अभी जीवित है। कवि उन बुद्धिजीवियों को संबोधित कर उनसे जानना चाहता है कि जिस मध्यवर्ग ने पूंजीवाद के पहले दौर में सामंतवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष कर इतिहास में महान भूमिका निभाई थी, पर वह आज अपने अनुभवजनित सत्यों को अपने से अलग क्यों रखता है और जनता से दूर क्यों हो गया है - "लोगों एक ज़माने में जो मेरे ही थे,/बहुत स्वप्न दृष्टा थे,/

कवि थे/ चिंतक और क्रांतिकारी थे/ क्या हो गया तुम्हें अब"[7]

मुक्तिबोध का पूरा विश्वास है कि संघटन और क्रांति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए अनिवार्य है। अपनी कविताओं में वे मामूली आदमी के संघर्षमय जीवन का अंत करने के लिए क्रांति का सहारा लेते हुए दिखाई पड़ते हैं । 'सूरज के वंशधर ' कविता की पंक्तियाँ हैं - "हवा में लहराती सुनहली ज्वाला एक/ रेंगती सी मेरे पास/धीरे - धीरे आती हुई /आसमान छूती हुई व धरती पर चलती हुई /बिखराकर नीले नीले स्फुलिंग समूह/

वह बनती है अकस्मात /विराट मनुष्य रूप/कि जिसे क्रांति कहते हैं /कि कहते हैं जन क्रांति।"[8]

हवा में लहराती सुनहली ज्वाला क्रांति की भावना है। वही भावना कवि के मन को प्रभावित करती है ।फिर वह ज्वाला आसमान से पृथ्वी तक फैलती है । वही बिखराव नीले- नीले स्फुलिंग समूह बन जाता है अर्थात् दुनिया भर के संघर्षरत लोग- क्रांति भावना से प्रभावित होकर संघटित करते हैं , वह क्रांति हो जाती है जिसे जनक्रांति कहते हैं। आज की व्यवस्था के अत्याचारों से दूषित जगत की उन स्थितियों के बीच भी कवि का मन इंतज़ार से भरित है। उनके मन में एक स्वप्न है सब ठीक हो जाएगा । डॉ. शशि शर्मा के शब्दों में "मुक्तिबोध सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाते हुए सबसे पहले उसकी साजिशों का खुला सा करते हैं और फिर भविष्य के सपने सजाते हैं । टूटी हुई ताकत को पुनः प्राप्त कर लेने का संकल्प उनकी कविताओं का भावी इतिहास है।"[9]

साहित्य, समाज, राजनीति के क्षेत्र में मुक्तिबोध उन शक्तियों का विरोध करते हैं जो जड़ता को बनाए रखने में सहायक है। "वे मध्यकाल की जड़ता के लिए राजपूत शासकों व उनकी धर्म नीति को, तत्कालीन शिक्षा पद्धति को जिम्मेदार ठहराते हैं।मुक्तिबोध ने जब स्वातंत्र्योत्तर भारत की जन्म कुंडली बनाने का उपक्रम किया तब वे लिखते हैं कि पुराना गया लेकिन नया नहीं आया, नए के नाम जो कुछ आया वह पुराने का आसन ग्रहण न कर सका। जीवन का व्यापक अनुशासन सत्य मर गया और नया तो केवल भ्रूण है अभी उसके हाथ पैर बनने हैं , विकसित होने हैं।"[10]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध ने आधुनिकता के प्रायः सभी प्रमुख पहलुओं को अपनी कविताओं में आत्मसात करने का प्रयास किया है । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आधुनिकता जैसे वैचारिक संदर्भों को चुनते समय भी उनकी कविता अपने मूलभूत कवितापन को छोड़ा नहीं हैं। अर्थात् कविता और विचार दोनों के बीच संतुलन को बनाए रखने का काम मुक्तिबोध ने बड़ी खूबी से किया है। शायद यही पहलु मुक्तिबोध को अपने समकालीनों से बहुत दूर रखता भी है ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. लक्ष्मणदत्त गौतम, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ 16
2. मुक्तिबोध,भूरी भूरी खाक धूल, पृ. 56
3. नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली खण्ड 2 , राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ,पृ 316
4. मुक्तिबोध,भूरी भूरी खाक धूल, पृ
5. वही, पृ.146
6. नेमीचन्द्र जैन , मुक्तिबोध रचनावली खण्ड 2, पृ. 287
7. मुक्तिबोध ,भूरी भूरी खाक धूल, पृ. 58
8. सूरज के वंशधर, पृ. 175
9. डॉ शशि शर्मा, समकालीन हिन्दी कविता अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में, पृ. 243
10. गजानन माधव मुक्तिबोध, मुक्तिबोध ग्रंथावली खण्ड 4, पृ.41

असोसियेट प्रोफसर, हिंदी विभाग
महाराजास कॉलेज, एऱणाकुलम

सुमित्रानंदन पंत जी के काव्य में चित्रित प्रकृति-चित्रण

शालिनी.सी

हिंदी में पंतजी प्रकृति कवि के रूप में माने जाते है। क्योंकि आपका जन्म कौसानी नामक एक सुंदर प्रदेशों में हुआ था। प्रकृति की गोद में पालन -पोषण हुआ था। स्वयं पंतजी कहते है कि ' कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है। जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कुमान्चल प्रदेश का है। 'पंतजी की कविता का मुख्य विषय भी प्रकृति का चित्रण है। प्रकृति के बारे में अनेक रचनायें लिखने लगे। वीणा , ग्रंथि , पल्लव, गुंजन,युगांत, युगवाणी, ग्राम्य, स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, युगापंथ, उत्तरा है तथा लोकायतन नामक महाकाव्य भी आपने लिखा है।

पंतजी की प्रारंभिक कविता में एक कौतूहल का भाव झलकता है। वे कहते है कि -' अगर मेरी कविता समझनी है तो आप मेरे साथ हिमालय की तलहटी में चलिए, वहाँ पर अल्मोड़ा नामक एक जगह है , वहाँ से 32 मील दूर मेरी जन्मभूमि है जो प्रकृति से भरपूर है। प्रकृति निरंतर नए रूप-धारण करती है। बस उसी से मुझे प्रेरणा मिली है। मैं मातृहीन तब प्रकृति की गोद में से ही मुझे माता का प्रेम मिला। पंतजी अपनी कविता में प्रकृति के सभी अंगों पर लिखा है। जैसे - फूल, पत्ते, चिड़िया, बादल, इंद्रधनुष, तारे, चाँद , नदी , झरना ,उषा ,संध्या, वसंत, पतझर आदि। प्रकृति के प्रति अपने मन में प्रेम है : "छोड़ द्रुमों की मृदु छाया/तोड़ प्रकृति से भी माया।/बाले, तेरे जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।"

इस पंक्तियों में कवि ने सौंदर्य की अपेक्षा प्रकृति सौंदर्य को ही अधिक महत्वपूर्ण मानता है। प्रकृति का मनोरम रूपों का मधुर और सरस चित्रण मिलता है। 'आँसू की बालिका और पर्वत प्रदेश में पावस 'आदि कविताओं में मस्मारिक एवं मनोहर चित्रण मिलता है। प्रभात में चिड़ियों की आवाज़ सुनकर वे पक्षी से पूछते है कि प्रभात होने की बात तुझे कैसे पता, किसने बताई, तू जो गीत गाता है,वह तुझे किसने सिखाय? प्रथम रश्मि का आना रंगिणी,/तूने कैसे पहचाना?/कहाँ-कहाँ है बाल विहंगिनी/पाया तूने यह गाना। '

इस प्रकार प्रभात और पक्षी के साथ कवि अपना भाव व्यक्त करते है। एक स्थान में फूल के पास आँख निकालकर घूमनेवाले मधुकर या भ्रमर को देखकर वह कहते है कि -हे भ्रमर, तेरे गीत मुझे भी सिखाओ ताकि मैं भी फूलों के प्यालों से मधुपान कर सकूँः "सिखा दोना, है मधुप कुमारी/मुझे भी अपने मीठे गान,/कुसुम के चुने कटोरों से,/मुझे करा दोना, कुछ -कुछ मधुपान।"

इस प्रकार कवि फूल और भ्रमर के बीच अपना तादात्म्य प्रकट करता है। पंतजी प्रकृति प्रेमी थे, प्रकृति के सामने अन्य सब चीज़ को कोई प्रधानता नहीं मानता। किन्तु कवि धीरे -धीरे अपने विचार में कुछ परिवर्तन लाया है और मानव को अधिक महत्वपूर्ण स्थान देता है। वे मानते है कि दुनिया का यह जीवन एक सुंदर वस्तु है और उसमें बढ़कर कोई वस्तु भी नहीं ।

दूर-दूर आसमान में तारे चमकते हैं, उसे देखकर कवि को ऐसा लगता है मानो कोई उसे निमंत्रण दे रहा है। वह निमंत्रण मौन भाषा में था।

' न जाने नक्षत्रों से कौन/ निमंत्रण देता मुझको मौन। ' कहा जाता है कि कवि पंतजी प्रकृति से इतना नज़दीक नहीं होता। वह माँ की मृत्यु के बाद ही , उस दुःख को भूलने के लिए प्रकृति को अपने साथ माँ के रूप में ले लिया। पंत जी का जीवन प्रकृति की गोद में पला था।

"जिसने कोमल बन सिखलयाया तुमको गाना/मृदु गुंजन पर बतलाया मधु संचय करना/फूलों की कोमल बाँहों के आलिंगन भर/जिसमें रंगों की भावुक तूलि से तुमने/शोभा के पदताल रंगे, मनुज का मुख आँका/जिससे लेकर मधु स्पर्श शब्द रस गन्ध दृष्टि/तुमने स्वर निर्झर बरसाए सुख से मुखरित।"

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि प्रकृति का सुंदर चित्रण करते

है। मातृहीन होने के कारण सम्भवत? वह साहसी व्यक्तिनहीं थे, और लड़ना या झगड़ना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। खेल -कूद भी साथियों के साथ अच्छा नहीं लगता। प्रायः वे अकेले ही घर के निकट एकांत स्थान में बैठकर आकाश की ओर, हिमलाय पर्वत को , जंगल के फूलों आदि को देखकर न जाने मन ही मन क्या अनुभव करता था - जिसे तब शब्दों, भावों, विचारों में वाणी नहीं दे पाता। एकांतप्रिय पंतजी सुमधुर एवं सुकुमार थे। कवि पंत का जीवन प्रकृति की गोद में पला था। माँ की ममतामयी गोद छीन जाने के बाद प्रकृति ने उन्हें अपनी गोद में पाला था।

"जो बालसहचरी रही तुम्हारी स्वप्न प्रिया,/ जो कला मुकुर बन गयी तुम्हारे हाथों में -/ तुम स्वप्न धनि हो जिसके बने अमर शिल्पी।"

पंतजी प्रेम ओर सौंदर्य के कवि है। कवि जीवन के शुभारम्भ से ही प्रकृति के सौंदर्य पर जुड़ रहे थे। प्रकृति उसे सदा समय लुभाती रही, प्यार करने लगी। प्रकृति का यही मनोरम रूप उसके विचारों को सुंदरता प्रदान कर दी। कवि-जीवन का विकास प्रकृति के साथ जोड़ते है । वृक्षों की ऊँचाई को मनुष्य की आकांक्षाओं से तुलना करते हुए कहते है कि - "गिरिवर के उर से उठ-उठ कर/उच्चाकांक्षाओँ से तरुवर/ है झाँक रहा नीरव नभ भर/ अनिमेष अटल कुछ चिंता पर।'

पंत के विचारों को आलम्बन देने के लिए प्रकृति एक साधन मात्र नहीं है , बल्कि वह एक साध्य है। नदी , पर्वत, बादल, समुद्र, पेड़-पौधों आदि को अपनी भावना में लेकर कविता रचने लगे। कहते है कि कवि अपनी रचनाओं के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए प्रकृति का सहारा लिया। अपने विचार को प्रभावशाली बनाने के लिए अलंकारों के माध्यम से प्रकृति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया। कहते है कि पंत के लिए प्रकृति के मनुष्य के सामान है यही उसका साथी है, उसकी जीवन के साथ सदा रहती है, मचलती है।

कभी पक्षियों बच्चों से हम/सुभग सीप सा पंख पसार/ समुद्र पेअर तो रुचि ज्योत्स्ना ने/पकड़ इंदू के कर सुकुमार। '

कवि के लिए प्रकृति ई ारीय सत्ता के समान है। प्रकृति सदा ईश्वर के रूप में विद्यमान है। पंतजी की भाषा शुद्ध एवं सुमधुर है। कवि ने अपने भावों के चित्रण कोमलकांत पदावली के माध्यम से किया है। कवि की भाषा इतनी जानदार है कि वह चलते हुए चित्र की तरह प्रस्तुत करते है - " बासों का झुरमुट संध्या का झुटपुट/ हैं चहक रही चिड़िया टी- वी -टी दुर -दुर।"

कवि को शब्दों की अंतरात्मा का ज्ञान था। इससे कवि पूर्ण रूप से जानते थे। कवि ने शब्दों का प्रयोग बड़ी सतर्कता से किया हैः अनिल-पुलकित स्वर्णजल लोभ/ मधुर नूपुर- ध्वनि खग कुल रोल। '

अपनी भाषा को और भी बढ़ाने के लिए पंतजी अपनी रचना में कहावतों या लोकोक्तियों का प्रयोग किया है।

हम संक्षेप में कह सकते हैं कि कवि पंतजी भावात्मक ओर कलात्मक पक्षों में भी बड़े निपुण थे। यह भी नहीं रचनाओं में भाव सम्प्रेषण एवं भाषा प्रयोग के क्षेत्रों में अपनी पूरी कुशलता का परिचय दिया गया है। पंतजी अपने भावों को जितने सुकुमार कवि मानते है उतने ही उनकी भाषा शैली की भी कोमलता स्वीकार की जाती है। आपकी यह विशेषताओं के कारण यानी सुमधुर, कोमल एवं सौंदर्ययुक्त रचनाओं के कारण उसे सुकुमार कवि नाम से अभिहित किया गया है। पंतजी प्रकृति रूपी माँ के गोद में पालने के कारण वे प्रकृति से बहुत निकटता या समीपता किसी अन्य कवियों में नहीं देख पाया। पंतजी प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन करते-करते प्रकृति में मुग्ध हो जाते हैं। इसलिए वह प्रकृति चित्रण के कवि हैं , उनकी सारी रचनाओं में उन्होंने प्रकृति मनोहारी चित्रण बहुत खूबी के साथ किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1) हिंदी के प्रतिनिधि कवि - डॉ विजय प्रकाश मिश्र

2) आधुनिक निबंध - रामप्रसाद किचलू

3) प्रगतिवादी कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य में ग्रामीण चेतना - डॉ जाया पटेल

असिस्टेंट प्रोफेसर ऑफ़ हिंदी
सरकारी वनिता कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

भूमंडलीकरण और हिंदी

डॉ.जिनो पी वरुगीस

सार रूप : भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक, मानवीय,सांस्कृतिक एवं साहित्यिक धरातल पर क्रांति आ चुकी है। भाषा पर आये हुए परिवर्तनों के कारण भाषा एकदम सरलतम की ओर दूसरा संकट की ओर भी पहुँच हो रही है। इस अध्ययन के द्वारा भूमंडलीकरण के ज़रिए हिंदी भाषा एवं साहित्य पर पड़े प्रभाव को रेखांकित किया गया है। तत्पश्चात संचार,साहित्य, सूचना प्रौद्योगिकी एवं बाज़ारीकरण के क्षेत्र में अनुप्राणित हिंदी भाषा के स्वरूप को समझाने का प्रयास भी किया गया है। हिंदी भारतीय संस्कृति एवं सद्भावना की भाषा है। भूमंडलीकरण के ज़रिए हिंदी भाषा का शब्द समूह बढ़ गया है साथ ही हिंदी भाषा की व्याकरणिक ढांचा बिगड़ गई है। भूमंडलीकरण के इस दौर में हिंदी भाषा को जीवित रखना आवश्यक है। प्रस्तुत आलेख, भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी भाषा की अस्मिता को प्रस्तुत करने का प्रयास है ।

बीज शब्द :- भूमंडलीकरण, मीडिया, बाज़ार, क्रांति, उपभोक्तावाद, प्रौद्योगिकी ।

मूल आलेख : 'भूमंडलीकरण' यानि 'ग्लोबलाइजेशन' (Globalization) के प्रभाव को हम भाषा, साहित्य और संस्कृति में देख सकते हैं। हमारी सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था से लेकर भाषा - संस्कृति में भी ' भूमंडलीकरण' के अभिलक्षणों का सशक्त प्रभाव देख सकते हैं। 'भूमंडलीकरण' के दौर में भाषा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय भाषाओं में नहीं बल्कि समूचे भाषाओं में इसका सीधा प्रभाव प्रकट होते हैं। भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में 'हिंदी' आज केवल साहित्यिक भाषा नहीं है विज्ञान, प्रौद्योगिकी, बाज़ार एवं मीडिया की भाषा भी है। संचार और जनसंचार के संसाधनों में आए तकनीकी बाहुल्य का प्रभाव हिंदी भाषा पर भी आ चुका है। इसी वजह से हिंदी भाषा निरंतर विकासशील हो रही है। रेडियो, टी.वी, पत्रकारिता, पर्यटन, कंप्यूटर और इंटरनेट जैसे क्षेत्रों में हिंदी खूब विकसित हो चुकी है। आज सिविल सेवा की परीक्षा से लेकर प्रायः सभी केंद्र सरकारी सेवाओं की परीक्षाओं में हिंदी भाषा के माध्यम से बहुत युवाओं ने विजय हासिल की हैं। मास मीडिया के क्षेत्र में हिंदी भाषा का ऊर्ध्वगामी प्रयोग दृष्टव्य है। परिवहन एवं पर्यटन के क्षेत्रों में भी हिंदी भाषा का ज़्यादा प्रयोग देख सकते हैं। भूमंडलीकरण के वर्धित प्रभाव से हिंदी भाषा का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इस सन्दर्भ में जन भाषा के उपर बाज़ार तथा मंडियों की भाषा के रूप में भी हिंदी का स्थान पाने की आवश्यकता के संबन्ध में विदेश मंत्रालय के हिंदी सलाहकार समिति (2009) के सदस्य वीरेन्द्रकुमार यादव का मत विशेष उल्लेखनीय है;- "भूमंडलीकरण के इस युग में जब देशों की भौगोलिक दूरियाँ मिटती जा रही हैं। तब समय और गति महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं । बाज़ार भाषा, व्यापार जगत का मापदंड होता जा रहा है तो ऐसे में हिंदी को इन चुनौतियाँ का सामना करके वास्तविकता से जूझना है और केवल जनभाषा के रूप में ही नहीं बल्कि बाज़ार की भाषा के रूप में भी अपने को स्थापित और सिद्ध करना है।"[1] " भूमंडलीकरण के प्रभाव से भाषा में नवीनता एवं संकट एक साथ आविर्भूत हुई है। इस दिशा में हिंदी भाषा अपेक्षित गति और आतंरिक उर्जा के साथ सक्रिय होना आवश्यक है। इसके संबंध में डॉ. करुणा शंकर उपाध्याय अपना मंतव्य प्रकट की है :- "यह सच है कि 21 वीं सदी वैश्वीकरण की आँधी लेकर आयी है जिसके चलते विश्वा की समृद्ध शक्तिशालिनी एवं बहुप्रचलित भाषाएँ और भी प्रभावी तथा ताकतवर बनकर उभरेंगी जबकि लघुतम भाषाएँ एवं बोलियाँ अस्तित्व के संकट से जूझेंगी। ऐसी स्थिति में जो भाषाएँ बहुभाषिक कंप्यूटर, इंटरनेट एवं सूचना - प्रौद्योगिकी की एकदम नवीनतम आविष्कृतियों में अपने संपूर्ण शब्दकोश, विश्वकोश, व्याकरण, साहित्य तथा ज्ञान -विज्ञान के विविध क्षेत्रों की तमाम उपलब्धियों के साथ दर्ज होगी और कंप्यूटर लाइब्रेरी तथा ई -बुक की दुनिया में अपनी उपस्थिति का गहरा अहसास कराएँगी, उनकी प्रगति निर्विवाद है। हिंदी इस दिशा में अपेक्षित गति और आतंरिक उर्जा के साथ सक्रिय है।"[2] इस कथन, आज के कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) के युग में भी हिंदी भाषा की विशिष्टता को बनाए रखने की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है। आगे विभिन्न क्षेत्रों में भूमंडलीकरण के द्वारा हिंदी की अभिव्यक्ति संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत है।

1. संचार माध्यम और हिंदी : आज संचार के प्रायः सभी क्षेत्रों में हिंदी भाषा खूब प्रचलित है। मीडिया की एक बड़ी देन यह है कि इसके कारण हिंदी को एक अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त हो चुका है। इस सन्दर्भ में प्रमुख भाषा चिन्तक ईश्वरचंद्र मिश्र का कथन विशेष उल्लेखनीय है :-" हिंदी का विकास इस भावना से किया जाए कि वह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्तिका माध्यम बन सकें।

शब्दों का विकास कुछ इस तरह किया जाए कि हिंदी को सभी भारतीय भाषाओं से अभिव्यक्तिका कौशल प्राप्त हो और उसे अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकार्य एवं ग्राह्य बनाया जा सकें। समूचे भारत में ही नहीं भारत की भौगोलिक सीमा के बाहर हिंदी की लोकप्रियता में सिनेमा और मीडिया की भूमिका बड़ी कारगर और स्मरणीय रही है। यह भाषा का सबसे उर्वर क्षेत्र है।"[3] सिनेमा, टीवी-रेडियो, पत्रकारिता, मोबाइल फोन, फेसबुक (Facebook) और व्हाट्सएप (Whatsapp) जैसे सोशल मीडिया पर हिंदी का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। आज इंटरनेट में कई हिंदी पत्र - पत्रिकाएँ उपलब्ध हैं। भूमंडलीकरण के द्वारा हिंदी भाषा पर एक नकारात्मक प्रभाव भी प्रकट है। अब चैनलों में हिंदी और अंग्रेज़ी के मिश्रित रूप 'हिंग्लिश' का प्रयोग व्यापक है। बी.बी.सी, डिस्कवरी और नेशनल जियोग्राफिक चैनलों ने हिंदी सेवा का विस्तार किया है। अतः वैश्विक धरातल पर हिंदी की स्वीकृति बढ़ने में इन चैनलों का योगदान सराहनीय है। ब्रिटिश विदेश मंत्रालय के पूर्व मिनिस्टर डेविड लिडिंग्टन ने सूचित किया है कि "बी.बी.सी की हिंदी सेवा कितनी लोकप्रिय है। अन्य देशों की तुलना में ब्रिटैन के पास एक ऐसा माध्यम है जिसके ज़रिए वह बहुत बड़ी संख्या में भारतीय जनता से संवाद कर सकता है। जिसमें सिर्फ अमीर - शहरी लोग ही नहीं बल्कि हर स्तर के लोग शामिल है। बी.बी.सी विश्व सेवा की शुरुआत वर्ष 1940 में हुई थी।"[4] हिंदी भाषा को विकसित करने में बी.बी.सी की हिंदी भाषा की शैली अत्यंत समृद्ध मानी जाती है। इंटरनेट में www.bbc.co.uk/hindi/ वेब पोर्टल में हिंदी भाषा में समाचार उपलब्ध है।

फ़िल्म के क्षेत्र में भी हिंदी भाषा, अग्रसर होती जा रही है। बॉलीवुड फ़िल्में हिंदी भाषा को एक ग्लोबल रूप प्रदान किया है। हिंदी पत्र -पत्रिकाओं का पाठक वर्ग अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर व्याप्त है। अंग्रेज़ी के प्रमुख पत्र - पत्रिकाओं ने हिंदी संस्करण निकालने का प्रयास प्रारंभ कर दिया है। अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका ' टाइम्स ' मुंबई से अपना हिंदी संस्करण निकालने जा रही है। अमेरिका की प्रमुख पत्रिका 'स्पैन' आज हिंदी में भी उपलब्ध है। पत्र -पत्रिकाओं के क्षेत्र में लिपि के स्तर पर एक बड़ा दोष आज खूब प्रकट है। ये है - रोमनागरी लिपि का आगमन (रोमन + देवनागरी अर्थात लिपि रोमन होगी लेकिन उच्चारण देवनागरी या हिंदी की होगी) इससे देवनागरी लिपि की सहजता नष्ट हो जा रही है। आज डिजिटल तकनीक और बहुरंगी चित्रों के प्रकाशन की सुविधा ने हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रांति की है। अतएव संचार के क्षेत्र में वैश्वीकरण के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव हिंदी भाषा में एक साथ प्रकट हैं।

2. भूमंडलीकरण और हिंदी साहित्य : हिंदी साहित्य का विश्वस्तरीय पहचान भूमंडलीकरण के कारण व्यापक हो रही है। आज हिंदी साहित्य सूचना क्रांति, सैटलाइट क्रांति और डिजिटल क्रांति के संपर्क से भूमंडलीकरण का लाभ उठा रहा है। हिंदी के विभिन्न साहित्यिक विधाओं में भूमंडलीकरण का प्रभाव दृष्टव्य है। हिंदी कविता के जगत में सूचना प्रौद्योगिकी, बाज़ारवाद, शेयर बाज़ार, संवेदी सूचकांक, मुद्रास्फीति, महाजनी पूँजी, विज्ञापन, कंप्यूटर, उपभोक्तावाद, उद्योग, पर्यावरण, बहुराष्ट्र कम्पनियाँ, मीडिया, मुनाफा, मोबाइल आदि मुख्य बीज शब्द के रूप में कविताओं का विषय बन गया है। एक उदाहरण देखिए:-"जिस तरह दिखता है वह उस तरह नहीं होता/यह बाज़ार का एक ठोस आध्यात्मिक आधार है।/इसलिए चमत्कारों का उत्पादन सबसे बड़ा व्यापार है/मसलन शांति नाम का यह आरामदेह सोफ़ा लीजिए/जिसके बीच में रखने के लिए यह पारदर्शी मेज़ है।"[5]

भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी कहानी साहित्य ने अपना अलग स्थान पाया है। राजेश जैन की कहानी 'क्यूँ में खड़ी उदासी' बहुराष्ट्र कंपनियों में काम करने वाले युवा लोगों के धीरे -धीरे रोबोट बनते चले जाने का और मानवीय संवेदनाओं से कटते जाने का सबसे अच्छा उदाहरण है। इस प्रकार एकांत श्रीवास्तव ने अपनी कहानी 'लड़की और आम' में बाज़ारवादी वैश्विक जीवन का वर्णन किया है। हिमांशु श्रीवास्तव, प्रदीप सौरभ जैसे रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में भूमंडलीकरण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। प्रदीप सौरभ का उपन्यास 'मुन्नी मोबाइल' इसका प्रमाण है। अनुवाद के माध्यम से विभिन्न भाषाओं की रचनाऐं आज हिंदी में तथा हिंदी की मशहूर रचनाऐं विश्व भर की प्रमुख भाषाओं में भी उपलब्ध है। अतः यह कहना समीचीन होगा कि हिंदी साहित्य जगत भी वैश्वीकरण के प्रभाव से मुक्त नहीं है।

3. सूचना - प्रौद्योगिकी और हिंदी: सूचना - प्रौद्योगिकी के इस नूतन युग में हिंदी को भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में अपनी भूमिका की प्रतिष्ठा करना परमावश्यक है। मास मीडिया, साहित्य जैसे क्षेत्रों में प्रयुक्तहिंदी में भूमंडलीकरण का प्रभाव प्रकट होने का एक मुख्य कारण सूचना - प्रौद्योगिकी अर्थात इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी (I.T) है। इसके संबंध में विद्वान प्रो. शिवाजी उत्तम चवरे ने लिखा है - "वैश्वीकरण के युग में सूचना और प्रौद्योगिकी के ताल - मेल के बिना हिंदी के विस्तार की कल्पना तक नहीं की जा सकती। अपनी तमाम कठिनाईयों के बावजूद भी हिंदी ने जिस तरीके से प्रौद्योगिक जगत में अपना पैर जमाया है उसकी भूरी - भूरी प्रशंसा मुक्तकण्ड से जितनी ज़्यादा की

जाय उतना कम है।"[6] वीडियो कॉनफेरेन्स के द्वारा हिंदी में राजनीतिक तथा प्रशासनिक कार्य भी अत्यंत सरल हो गए है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) के क्षेत्र में हिंदी भाषा आगे बढ़ रही है ।

4. बाज़ारीकरण और हिंदी: हिंदी भाषा में बाज़ारीकरण का प्रभाव बढ़ने का एक प्रमुख कारण मीडिया है। यहाँ की जनभाषा के माध्यम से ही विदेशी कम्पनियाँ भारत के विशालतम बाज़ार में कूदना चाहती हैं। इसलिए उन्होंने हिंदी भाषा को अपनाकर एक नया रूप प्रदान किया है। अत: हिंदी भाषा वाणिज्य एवं व्यापार की भाषा बनकर बाज़ार में सर्वाधिक लाभ प्राप्ति का सशक्तमाध्यम बन चुकी है। आज प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, सिनेमा तथा चैनलों ने हिंदी के बाज़ार मूल्य को बढ़ावा दिया है। बाज़ारवाद की विविध प्रायोजक शक्तियाँ आज हिंदी भाषा के साथ है। बाज़ारीकरण के इस दौर में हिंदी को सभी दृष्टियों से अपनी ' यूटिलिटी ' प्रकट करनी ही पड़ेंगी। हिंदी भाषा के बाज़ार मूल्य के संबंध में भाषा चिंतक श्री शंभुनाथ का मंतव्य विशेष उल्लेखनीय है -"विश्वापटल पर हिंदी तीसरी सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा है। इसका समाज यूरोपीय बाज़ार से अधिक बड़ा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की निगाह में दफ्तर भले अंग्रेज़ी में काम कर रहें हो पर हिंदी ही नहीं हिन्दीतर क्षेत्र के उपभोक्ताओं से भी सहज उनके संपर्क की भाषा मुख्यत: हिंदी है।"[7] बाज़ार में विज्ञापन की अहम् भूमिका है। हिंदी व्यावसायिक विज्ञापन अधिक मधुर, गीतात्मक बनने लगी है। जिसके कारण आज की दुनिया में हिंदी रोज़गार की भाषा बन गयी है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने विज्ञापनों में हिंदी भाषा का प्रयोग करके अपने माल की बिक्री आसान बनाती हैं। इस तरह के विज्ञापनों में विदेशी शब्दों का प्रभाव भी अधिक है। प्रयोजनमूलक हिंदी के प्रयोग के विविध क्षेत्रों में विशेषकर विश्व गाँव (Global Village) के सन्दर्भ में विज्ञापन का महत्वपूर्ण स्थान स्थापित हो चुका है। विज्ञापन जगत में हिंदी का ही बोल - बाला है। राष्ट्रीय - अंतर्राष्ट्रीय चैनलों, प्रिंट मीडिया तथा बाह्य माध्यमों जैसे - बैनर, पोस्टर आदि में भी हिंदी व्यावसायिक विज्ञापन देखा जा सकता है। अब रोमनागरी का प्रभाव हिंदी व्यावसायिक विज्ञापन के क्षेत्र में भी प्रकट है। उस विज्ञापन की लिपि रोमन है, परन्तु शब्द हिंदी की है। सिस्का लेड (SYSKA LED) सी.एफ.एल बल्ब निर्मित करनेवाला एक प्राइवेट कंपनी है। इस कंपनी का एक विज्ञापन देखिए - 'Ek Se Shuru Karo'[8] इन विज्ञापन में उच्चरित भाषा हिंदी है, पर लिपि रोमन है। अत: बहुराष्ट्रीय कंपनियों को हिंदी की ज़रूरत है, लेकिन उसकी लिपि की ज़रूरत नहीं है। इस भाषागत बदलाव भूमंडलीकरण के जरिए हिंदी भाषा में आए गए संकट की सूचना है। व्यावसायिक विज्ञापनों के अलावा समाचार पत्रों, दृश्य-श्रव्य माध्यमों के कार्यक्रमों एवं फ़िल्मों में एक भ्रष्ट, अशुद्ध, मिश्रित या खिचड़ी भाषा चल रही है, उसमें लिंग दोष, वचन दोष, अंग्रेज़ी शब्दों का मिश्रण, विराम चिह्नों का लोप और वाक्य रचनागत दोष बखूबी देखा जा सकता है।

निष्कर्ष : कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण के द्वारा जनसंचार, साहित्य, सूचना प्रौद्योगिकी और बाज़ारीकरण के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग व व्यवहार का स्तर अधिक विकसित हो गया है। केवल इन क्षेत्रों में नहीं अन्य नित-नूतन क्षेत्रों में भी हिंदी ने अपनी अद्भुत क्षमता एवं सामर्थ्य को दर्शाया है। हिंदी के शब्द भंडार और अधिक विस्तृत हुई है। कंप्यूटर एवं इंटरनेट पर हिंदी भाषा स्वरोज़गार के अवसर प्रदान करते है। आज हिंदी के ज़रिए अनुप्राणित हो रहे ये सभी क्षेत्र इस तथ्य का पुष्ट - प्रमाण है कि भारतीय जन - मानस में अपने विचार एवं अनुसंधान को पहुँचने में हिंदी भाषा सार्थक हुई है। वैश्वीकरण और उदारीकरण के इस दौर में उसके नैसर्गिक प्रवाह को रोकने की शक्तिकिसी में भी नहीं है। अत: हिंदी भाषा अपनी सहजता को बिना नष्ट करके विश्व की श्रेष्ठ भाषा का रूप धारण कर भारत की गरिमा को बढ़ाने में समर्थ होना अनिवार्य है।

सन्दर्भ सूची

1. वीरेन्द्रकुमार यादव, राजभाषा भारती, पृ. 10, जनवरी - मार्च - 2009
2. डॉ करुणा शंकर उपाध्याय, ' हिंदी का विश्व सन्दर्भ'- आमुख से, राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली, पहला संस्करण - 2008)
3. ईश्वरचंद्र मिश्र,' इस्पात भाषा भारती ', जून -जुलाई 2008, पृ. 23
4. बी.बी.सी हिंदी प्रसारण, दै.भास्कर.कॉम, 15 मार्च 2011
5. संग्रथन, पृ.50 से उदृत, अंक:9, वर्ष:28, मार्च: 2015
6. वाङ्मय, पृ. 30, मई 2012
7. श्री शंभुनाथ, भाषा, पृ. 40, सितम्बर- अक्टूबर, वर्ष: 40, अंक: 1
8. 'द हिन्दू ' - अंग्रेज़ी दैनिक, 10 जनवरी 2015

सहायक प्राचार्य, हिंदी विभाग

मार तोमा कॉलेज

चुंगतरा, मलप्पुरम, केरल-679334

आदिवासी समाज में प्राकृतिक शक्ति की अवधारणा और उनकी पर्यावरण दृष्टि

डॉ.राठोड पुंडलिक

शोध सारः आदिवासी समाज की पर्यावरणीय दृष्टि जो सकारात्मक, प्रगतिशील एवं प्रासंगिक है।आज के इस उपभोक्तावादी संस्कृति तथा पर्यावरण, प्राकृतिक पारिस्थितिकी का अनुचित प्रयोग ने हमारे समक्ष अनेक चुनौतियों को खड़ा कर दिया है। जिसके फलस्वरूप भारत ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व अनेक प्राकृतिक आपदाओं का सामना कर रहा है। इन चुनौतियों का सामना करने तथा पर्यावरणीय हानि को कम करने हेतु विश्व सरकारें तथा अनेक संगठनों द्वारा इस दिशा में कार्य किया जा रहा है लेकिन परिणाम संतोषजनक नहीं है क्योंकि मानव समाज ने ऐसी जीवन शैली विकसित कर ली है जो पर्यावरण विनाश पर आधारित है। अतः मानव समाज को अपनी जीवन शैली तथा जीवन जीने के तौर-तरीकों में परिवर्तन लाना आज सर्वाधिक आवश्यक है।

इस दृष्टि से यदि हम देखें तो प्रकृति और पर्यावरण के संदर्भ में आदिवासी समाज का दृष्टिकोण प्रासंगिक और प्रगतिशील है, इसे आज मुख्य धारा को भी अपनाने के आवश्यकता है। आदिवासी समाज की पर्यावरणीय दृष्टि के मूल में उनकी अपनी प्राचीन काल से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही मान्यताएँ और अवधारणाएँ विद्यमान हैं। वे अवधारणाएँ प्राकृतिक शक्ति और संसाधनों के संदर्भ में आदिवासी जीवन दृष्टि को विकसित करती हैं। इन अवधारणाओं में प्रमुख हैं जीववाद, बोंगावाद, और प्रकृतिवाद ये सभी अवधारणाएँ प्रकृति के प्रति एक प्रगतिशील दृष्टि प्रदान करती हैं। इसी दृष्टिकोण के साथ आज की मानव सभ्यता को आगे बढ़ाना आवश्यक है अन्यथा वह दिन दूर नहीं कि जिस प्रकार आज शुद्ध जल की बोतल साथ लेकर चलना प्रगति का प्रतीक माना जा रहा है। उसी प्रकार ऑक्सीजन की बोतल साथ लेकर चलाना भी विकसित होने का प्रतीक बन जाए।

मूल शब्दः प्राकृतिक शक्ति, अवधारणा, पर्यावरणीय दृष्टि, जीववाद, बोंगावाद, प्रकृतिवाद, मातृशक्ति, पर्यावरण, पारिस्थितिकी, जीवन शैली, संसाधन, प्राकृतिक संसाधन, प्राकृतिक आपदाएँ।

आदिवासी समाज में प्राकृतिक शक्तिकी अवधारणा एक ऐसा विषय है जो आदिवासी समाज के असंख्य समुदायों में प्रचलित प्राकृतिक शक्ति की अवधारणा का समग्र रूप में विश्लेषण की माँग करता है। भारत के दक्षिणतम बिंदु अन्दमान निकोबार द्वीप समूह में निवासित जारवा, शॉम्पेन समुदायों से लेकर उत्तर में लद्दाख के लद्दाखी समुदाय और पश्चिम में गुजरात गिर के रातवा, रबारी, भरवाड़, चारण समुदायों से लेकर अरुणाचल प्रदेश के पूर्वतम छोर पर निवासित अम्बोर, डफला समुदायों तक भारत में असंख्य समुदाय हैं। जिनकी मान्यताओं आवधारणाओं में व्यापक भिन्नताओं के बावजूद प्राकृतिक शक्ति की अवधारणा के संदर्भ में समान मान्यताएँ और अवधारणाएँ विद्यमान हैं।

आदिवासी समाज प्राकृतिक शक्ति को मातृशक्तिके समरूप देखता है और मातृशक्ति, मातृत्व सृजन की मूल संवेदना, उसमें कोमलता, सहृदयता, संवेदना के साथ दृढ़ता भी विद्यमान है। अपने इन्हीं गुणों के कारण मातृत्व शक्ति ब्रह्मांड, प्रकृति एवं जीव-जंतु प्राणियों एवं मानव समाज की धुरी बनी हुई है।

भारतीय देव संस्कृति में माता सदा से पूजनीय वंदनीय और आदरणीय रही है। समाज में उसे सम्मानित दृष्टि से देखने की परंपरा है। स्कंदपुराण में माता की महत्ता का वर्णन किया गया है, नास्ति मातृसमा छाया, नास्ति मातृसमा गतिः।/नास्ति मातृसमं त्रैनं, नास्ति मातृसमं प्रपा।[1]

आदिवासी समाज में भी मातृशक्ति की अवधारणा व्यापक रूप से प्रचलित है। यहाँ तक कि आदिवासी समाज की सम्पूर्ण जीवन-पद्धति एवं जीवन मूल्य सभी एक मातृशक्ति

से प्रेरित एवं संचालित होते हैं। और यही मातृशक्ति की अवधारणा उनकी प्रकृति की अवधारणा है।

आदिवासी समाज में प्राकृतिक शक्ति की अवधारणा का विश्लेषण करने के पहले हमें कुछ सवालों के जवाब तलाशने होंगे क्योंकि उन्हीं जवाबों से मातृशक्ति की अवधारणा का रूप-स्वरूप स्पष्ट होता है। वे सवाल हैं कि आदिवासी समाज का मौलिक धर्म क्या है? उनकी दृष्टि में शक्ति का स्वरूप क्या है?, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का रहस्य क्या है?, वे किस पद्धति को अपनाते हैं आदि-आदि।

कहना न होगा कि आदिवासी समाज में असंख्य समुदायों की विविधताओं के बावजूद प्रकृति शक्ति के संबंध में अधिकांश विशेषताएँ सभी समुदायों में समान रूप से पाई जाती हैं। उन समान मान्यताओं के अन्तर्गत जीववाद, बोंगावाद, प्रकृतिवाद, टोटमवाद, बहुदेववाद, पूर्वज पूजा एवं वर्जना आदि महत्वपूर्ण हैं। इन सारी अवधारणाओं का मूल तत्व है प्रकृति और ये अवधारणाएँ उस मूल प्राकृतिक शक्ति से संचालित हैं।

आदिवासी समाज में शक्ति का स्वरूपः आदिवासी समाज में शक्ति का स्वरूप केवल व्यापक ही नहीं बल्कि उसका वास सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है। आदिवासी अपनी प्रार्थना करते समय उस शक्ति को विभिन्न नामों से संबोधित करते हैं। जैसे मरकंबा, मरियामा, याड़ी, जगदंबा, भवानी, ब्रह्मांड नायिका, विश्वसुन्दरी, अष्टभुजाधारी, असराई, मसाई, अंबा, तुलजा, वागोबादेवी, आदि विभिन्न नामों से संबोधित करते हुए यह याचना की जाती है कि हे माँ आप समस्त पर्यावरण, जीव-जंतुओं की रक्षा कर तथा उसके बाद हमारी रक्षा करें।

आदिवासी समाज एक ऐसी सर्वशक्तिशाली और सर्वस्व व्याप्त शक्ति की आराधना करता है जो अदृश्य होकर भी दृश्य है। आदिवासी किसी अलौकिक अथवा अव्यवहारिक शक्ति पर उतना विश्वास नहीं करता जितना वह दृश्य शक्ति पर करता है। आदिवासी अदृश्य शक्ति को ही दृश्य शक्ति के रूप में स्वीकार करता है और वह शक्ति संपूर्ण ब्रह्मांड के निर्माण का कारण, करण और ब्रह्मांड के कण-कण में व्याप्त है किंतु वह शक्ति एक है लेकिन वह प्रकृति के विभिन्न रूप धारण कर हमारे समक्ष दृश्यमान है इसलिए हमें दृश्यमान जगत का ही आदर और रक्षा करनी चाहिए। यही कारण है कि आदिवासी प्रकृति और पर्यावरण के प्रति इतने संवेदनशील होते हैं। "आदिवासी समाज उस शक्ति के स्वरूप को व्यापक दृष्टि से देखता है। वह अपने आस-पास व्याप्त संसार एवं प्रकृति को ही उस शक्ति का स्वरूप मानता है और उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है।"[2] अतः आदिवासी समाज के शक्तिसंबंधी अवधारणा में प्रकृति का अत्यधिक महत्व है। वह सर्व-व्यापक शक्ति न केवल मनुष्य को बल्कि पेड़-पौधे, वन्य प्राणी तथा पूर्वजों को भी अपनी अपनी योग्यता के अनुसार शक्तियाँ प्रदान करती है। जिसके फलस्वरूप ये सभी अपना अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वृक्ष उसी शक्ति के कारण हरे-भरे रहते हैं, नदी उसी शक्ति को लेकर प्रवाहित होती है, वन्यप्राणी उसी शक्ति के फलस्वरूप विविध रूपों में जीवन व्यापन करते हैं। उसी प्रकार मनुष्य को भी शक्ति प्राप्त है जिसका प्रयोग कर वह उस शक्ति द्वारा निर्मित प्रकृति में व्याप्त संसाधनों का उचित प्रयोग कर अपना विकास करे लेकिन मनुष्य अपनी शक्ति का अनुचित उपयोग कर प्रकृति को हानि पहुँचा रहा है। आदिवासी समाज इसी संदर्भ में मुख्यधारा के समाज से भिन्न है।

आदिवासी समाज की विभिन्न धार्मिक मान्यताओं में प्राकृतिक शक्ति का महत्वः भारतीय आदिवासी समाज विविध समुदायों का प्रतिनिधित्व करता है। इस देश में हज़ारों आदिवासी समुदाय हैं तथा प्राकृतिक शक्ति को लेकर हज़ारों मान्यताएँ भी प्रचलित हैं। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि वे सारी मान्यताओं में मूलभूत समानताएँ विद्यमान हैं। इसी कारण समस्त आदिवासी समाज की जीवन शैली भी लगभग समान है।

जीववादः जीववाद की मान्यता उन शक्ति पर विश्वास करती हैं जिसने इस प्रकृति का निर्माण किया है। जड़-चेतन में विद्यमान वह अदृश्य शक्ति जो एक नियंत्रक और एक संचालक के समान प्रकृति का संचालन करती है। वह पत्थर में भी विद्यमान है और जीवधारियों में भी अतः आदिवासी समाज के शक्ति के प्रतीक वृक्ष से लेकर प्रकृति की कोई भी वस्तु हो सकती है। इस जीवात्मवाद के संदर्भ

में आदिवासियों की मान्यता है कि "अदृश्य जगत में एक अभौतिक एवं जीव तत्व सदृश्य शक्तिहोती है, जो सजीव और निर्जीव पदार्थों पर अपना प्रभाव डालती है, यदि उचित स्थिति में उसका ठीक उपयोग करने का प्रयास किया जाय तो वह आश्चर्यजनक फल देने में समर्थ होती है।"[3] उचित स्थिति में ठीक प्रयोग करने हेतु आदिवासी विभिन्न प्रकार की पूजा अर्चना करते हैं और उस अदृश्य शक्तिको प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। अर्थात- जड़ीबूटियों से चिकित्सा पद्धति सीखना जैसे प्रकृति के अनेक रहस्यों को जानने का भी प्रयास करते हैं। वे प्रकृति के संकेत मात्र से ये पहचान लेते हैं कि किन परिस्थितियों में प्रकृति और पर्यावरण तथा मौसम में किस प्रकार का बदलाव होगा। जीववाद की यह अवधारणा प्राकृतिक हलचल को समझने तथा उसपर अनुसंधान करने हेतु आज भी प्रासंगिक है।

बोंगावाद: यह अवधारणा मध्य भारतीय आदिवासी समुदाय 'मुंडा' जनजाति में प्राकृतिक शक्ति संचालन के रूप में प्रचलित है। 'बोंगावाद' के संदर्भ में शरदचंद्र राय कहते हैं कि "बोंगा शब्द से आत्मा और देवता दोनों का बोध होता है।"[4] इस आदिवासी समुदाय की मान्यता है कि महान ईश्वर बोंगा अपनी शक्तिके सहायता से अपार प्राकृतिक संसाधनों का निर्माण किया है। कुछ आदिवासी समाज जैसे बस्तर का 'मुरिया' समाज इसी शक्तिको 'लिंगों' नाम देते हैं।

'बोंगावाद' के अंतर्गत शक्तिविहीन ईश्वर की कल्पना नहीं है बल्कि शक्ति है इसलिए वह पूजनीय है। ईश्वर बोंगा की शक्तिका स्वरूप बहुत व्यापक है। कभी वह शक्तिआत्मा का रूप ग्रहण कर पूर्वजों की श्रेणी में आ जाती है तो कभी समस्त प्रकृति में व्याप्त अपने ही स्वरूप को और दृढ़ बनाकर प्राकृतिक आपदाएँ भी ले आती है। वह शक्तिऐसा इसलिए करती है क्योंकि वह मनुष्य को प्राकृतिक नियमानुसार जीवन जीने हेतु चेतावनी देती है। अतः उस प्राकृतिक शक्ति को प्रसन्न रखने हेतु मनुष्यों को प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना आवश्यक है। कभी-कभी प्राकृतिक आपदा लानेवाली इस शक्ति को शांत करने हेतु आदिवासी समाज कुछ प्रथाओं को भी अपनाता है। "उसकी पूजा अर्चना करना, बलि देना, भोजन कराना आदि।[5] 'हो' और 'संथाल' आदिवासी समुदाय भी इसी 'बोंगावाद' को स्वीकार करते हुए ईश्वरीय शक्तिको दयामयी मानते हैं। उनके अनुसार बोंगा एक शक्ति है जो सर्वत्र व्याप्त है और वह कोई भी रूप धारण कर सकती है। इसका वास ब्रह्मांड के सभी जड़-चेतन तत्वों में विद्यमान है। यह शक्तिपशु-पक्षी, जीव-जंतु के जीवन तथा जीवन शक्तिको प्रोत्साहित करती है। वर्षा, आँधी, ओला, बाढ़ और शीतलता आदि इसी शक्तिके अनेक रूप हैं। बुराइयों का विनाश, महामारी को रोकने, नदी की धारा को प्रभावित करने, सर्पों को विष देने तथा भालुओं और लोमड़ियों को शक्तिप्रदान करने जैसे असंख्य कार्य वही शक्तिकरती है।

अतः बोंगावाद में शक्ति का स्वरूप न केवल व्यापक है किंतु उसके कार्य भी असंख्य हैं। प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म क्रिया प्रतिक्रिया और अभिक्रिया उसी शक्ति की इच्छा पर निर्भर करती है।

प्रकृतिवाद: 'प्रकृतिवाद' का अर्थ है कि दृश्यमान जगत में जितने भी प्रकृति के रूप में विद्यमान हैं वह सब ईश्वरीय रूप है तथा इन रूपों का जब हम अपने हित अथवा जीवन प्रक्रिया की आवश्यकता पूर्ति हेतु प्रयोग, उपयोग करते है तब उसके प्रति (शक्तिके प्रति) आभार या कृत्यज्ञता व्यक्त करना ही प्रकृतिवाद है।

प्रकृति में व्याप्त शक्ति के प्रति कृत्यज्ञता व्यक्त करने हेतु आदिवासी समाज सूर्य पूजा, चंद्र पूजा, वृक्ष पूजन, पशु-पक्षी वंदना, पर्वत आराधना, धरती स्तुति, नक्षत्रों का दर्शन, जलाशयों के प्रति श्रद्धा आदि धार्मिक कार्य अधिकांश सभी आदिवासी समुदायों में प्रचलित हैं। इतना ही नहीं प्रकृति के प्रति यह कृतज्ञता भाव आदिवासी समाज का सांस्कृतिक, सामाजिक और प्रमुख जीवन मूल्य है।

आदिवासी समाज की मान्यता है कि यदि प्रकृति संतुष्ट है तब वह उनके जीवन में सुख-शांति तथा अनेक आपदाओं, रोगों से उनकी रक्षा करती है और यदि प्रकृति असंतुष्ट है तब वह अधिक वर्षा, बाढ़, तूफान, आंधी आदि विनाशकारी क्रियाओं से उन्हें बाधा पहुँचाती है। अतः आदिवासी समाज किसी भी स्थिति में वह कार्य अथवा क्रिया-कलाप को बढ़ावा नहीं देगा, जिससे प्रकृति का

विनाश हो और पर्यावरण असंतुलित हो। आज इसी अवधारणा की आवश्यकता समस्त विश्व को है।

इस प्रकृति पूजा के संदर्भ में डॉ. ललित प्रसाद विद्यार्थी लिखते हैं कि "प्रकृति की पूजा एक दूसरे प्रकार के विश्वास से भी संबंध है। जो जनजातियों में पाई जाती है। सूर्य, चंद्रमा एवं पृथ्वी या तारे आदि को सर्वशक्तिमान व्यापक शक्तिमाना जाता है और आदिवासी इन्हीं की पूजा करते हैं।"[6] ललित प्रसाद का यह कथन इसलिए स्वीकारनीय है कि आदिवासी समाज दृश्यमय जगत में विश्वास करता है। वह जीवन को व्यावहारिकता में जीता है न कि काल्पनिक कथाओं में और यही व्यावहारिकता आदिवासी समाज को सकारात्मक एवं नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। जो भी दिखाई देता है उसका रूप स्वरूप कुछ भी हो किंतु उसके स्वरूप को आस्तिक ही नहीं बल्कि नास्तिक को भी स्वीकार कराना पड़ेगा। यही प्रगतिशील तत्व ही प्रकृतिवाद की प्रासंगिकता को सिद्ध करता है।

प्रकृतिवादी अवधारणा के अन्तर्गत न ही मंदिर, मस्जिद, गुरु द्वारा, गिरिजाघर हैं और न ही किसी घरों में गुफाओं में बैठा कोई मान्यता प्राप्त विशेष व्यक्ति इस अवधारणा के अंतर्गत आदिवासी स्वयं सामान्य व्यक्तिभी है और विशेष मान्यता प्राप्त पुजारी भी है। "इन जनजातियों का न कोई धर्म है न ही कोई धर्म ग्रंथ और न ही ये मंदिर बनाकर मूर्ति पूजा करते हैं। पहाड़, नदी, तालाब, गुफा ही इनका ईश्वर, देवता, एवं श्रद्धा है।"[7] प्रकृतिवाद की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि यह प्राकृतिक संतुलन तथा पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में मदद करता है। क्योंकि प्रकृति में विद्यमान नदी, नाले, झरने, पर्वत, वृक्ष, जीव-जंतु सभी में शक्तिका वास मानकर सबका सम्मान और रक्षा करना एक जीवन मूल्य बन जाता है। 'वन लक्ष्मी' उपन्यास में नायक जाबिरा फूल, अक्षत दिखाते हुए अपने साथियों से कहता है "आस-पास के आदिवासी इस पेड़ की पूजा करते हैं।"[8] और उस विशाल वृक्ष को देखकर उपन्यास का एक पात्र शिवदत्त सोचता है कि क्यों न पूजा करें जब अनायास मस्तक नत हो जाता है उस अलौकिक अचित्य शक्तिके सम्मुख जिसकी सृष्टि यह अद्‌भुत वृक्ष है। इसी शक्तिको कोई प्रकृति कहता है, कोई परमात्मा कहता है। आदिवासी इसे "महाशक्ति कहते हैं जिसका अर्थ देवता या भूत प्रासंगानुकूल दोनों ही होता है।"[9] आज के उपभोक्तावादी विश्व जगत में इस अवधारणा की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है।

उपर्युक्तविभिन्न अवधारणाओं के अलावा आदिवासी समाज में टोटमवाद, बहुदेवाद, पूर्वजवाद आदि अवधारणाएँ प्रचलित हैं किंतु सभी अवधारणाएँ उसी प्रकृति से आदिवासियों के जीवन मूल्यों को जोड़ती हुई समानताएँ दर्शाती हैं।

यह प्रकृतिवाद आदिवासी जीवन शैली का मूल प्रेरणास्रोत है। आदिवासी समाज की पर्यावरणीय दृष्टि के मूल में प्रकृतिवाद की यही अवधारणा कार्य करती है। प्रसिध्द पर्यावरणविद डौबेनामीर (1959) ने पर्यावरण के आम तत्व बताते हुए लिखते हैं कि "पर्यावरण उन सभी दशाओं प्रणालियों तथा प्रभाओं का योग है, जो जीवों व उनकी प्रजातियों के विकास जीवन और मृत्यु को प्रभावित करती है।"[10] आदिवासी समाज भी इन्हीं तत्त्वों को प्राकृतिक शक्तिमानता है जो जीवों को प्रभावित करता है। और उस प्रभाव का सकारात्मक अथवा नकारात्मक होना इस पर निर्भर करता है कि हम उन प्राकृतिक तत्वों के प्रति कैसा व्यवहार करते है। एक और अन्य परिभाषा कहती है कि "जो हमें सभी ओर से घिरे हुए हैं, वह पर्यावरण है। क्या घेरे हुए हैं हमें, वायु, जल, भूमि, भाँति-भाँति के जीव-जंतु और वनस्पतियाँ इन सभी को हम कहते हैं पर्यावरण के घटक।"[11] अतः आदिवासी समाज पर्यावरण को अपने जीवन तथा जीवन शैली में रचा बसा लिया है। वह यह अवश्य जानता है कि यदि पर्यावरण विकसित रहेगा तभी हमारा जीवन भी सुरक्षित रहेगा। अन्यथा प्राकृतिक शक्ति हमारे जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करेगी। यही विचारधारा आदिवासी समाज को पर्यावरण के संदर्भ में संवेदनशील रखती है। और यह भी सिद्ध है कि जहाँ-जहाँ आदिवासी समुदायों का निवास रहा है वहाँ-वहाँ पर्यावरण और पारिस्थितिकी को कोई नुकसान नहीं हुआ है। जंगल, नदी, नाले, सभी प्राकृतिक रूप से सुरक्षित हैं किंतु आज परिस्थितियाँ बदल रही हैं। और हम प्राकृतिक संसाधनों का

उपयोग अनुचित रूप से कर रहे है परिणामस्वरूप कई चुनौतियाँ आज हमारे समक्ष खड़ी हैं।

हम अत्यधिक उपभोगी समाज के लिए वस्तुओं की आपूर्ति करनेवाले औद्योगिक विकास, गहन कृषि तथा अनियंत्रित उत्खनन, जल, खनिज, पेट्रोलियम उत्पादों और लकड़ी आदि प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक (अनियंत्रित) दोहन कर रहे हैं। खनिज और तेल जैसे अनवीकरणीय संसाधनों का भंडार भविष्य में समाप्त हो जाएगा। इमारतीं लकड़ी और जल जैसे नवीकरणीय संसाधनों का उपयोग किया जा सकता है किंतु उन्हें प्रकृति जिस गति से निर्मित करती है उस गति से अधिक तीव्र गति से यदि हम उनका दोहन करेंगे तो ये संसाधन भी पर्याप्त नहीं रह पाएँगे। अतः एक सही सलामत प्राकृतिक पर्यावरण को बनाए रखना न केवल आदिवासियों की जम्मिेदारी है बल्कि संपूर्ण मानव समाज की जम्मिेदारी है क्योंकि एक व्यवस्थित प्राकृतिक संरचना ही एक स्पंज के समान कार्य करती है। जो वर्षा काल में जल को सोखती है और सूखे मौसम में धीरे-धीरे उसे छोड़ती जाती है। इसके अलावा मानसून काल में बाढ़ आती है और वर्षा काल के समाप्त होने के पश्चात नदियाँ सूख जाती हैं। इन्हीं पर्यावरणीय नकारात्मक प्रभावों को आदिवासी समाज प्राकृतिक शक्तिका नाराज़ होना समझते हैं। इसीलिए आदिवासी कभी पर्यावरण की संरचना को परिवर्तित अथवा उसे नुकसान पहुँचाने के संदर्भ में सोच भी नहीं सकता।

निष्कर्ष : समस्त भारतीय आदिवासी समाज में इन अवधारणाओं को विभिन्न नामों से जाना जाता है लेकिन सभी अवधारणाओं के मूल में प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा का ही चिंतन छुपा हुआ है। हम आज एक ऐसी दुनिया में रह रहें हैं जिसमें प्राकृतिक संसाधन सीमित है। जल, वायु, खनिज तेल, जंगल, घास के मैदान, सागर, कृषि और मवेशियों से मिलनेवाली वस्तुएँ ये सभी हमारे जीवन रक्षक व्यवस्थाओं के अंग हैं। यह आशा कतही नहीं की जा सकती कि जिस प्रकार आज प्रकृति दोहन हो रहा है उस दोहन का भार पृथ्वी उठा पाएगी। प्रकृति के स्वच्छ जल को हम बड़ी मात्रा में प्रदूषित कर रहे हैंप्र जिसपर विचार करना भी आवश्यक है। अतः प्राकृतिक पारिस्थितिकी और पर्यावरण को यदि सुरक्षित रखना है तो हमें आदिवासी जीवन शैली से सीखने की आवश्यकता है। आदिवासी समाज के प्राकृतिक शक्ति संबंधी अवधारणाएँ भले ही हमें रूढ़गित लगती हों लेकिन आज उन अवधारणाओं की प्रासंगिकता बहुत अधिक है। प्राकृतिक रूप-स्वरूप और संसाधनों में यदि हम ईश्वरीय शक्तिका वास स्वीकार करते है तो हम अनायास रूप से उन संसाधनों का उचित उपयोग कर पाएँगे।

संदर्भ सूचीः

1. स्कंदपुराण अध्याय-6 पृष्ट- 103-104 (resanskrit.com) पृष्ट.6.123-104
2. आदिवासी उपन्यासों का समाजशास्त्र - अमन प्रकाशन- 2017, पृष्ट-109-
3. मानव और संस्कृति- शरदचंद्र राय - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1985 पृष्ट-262
4. मानव और संस्कृति - डी. एन. मुजूमदार- राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1987, पृष्ट-262)
5. मानव और संस्कृति - श्यामाचरण दुबे - राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1998 पृष्ट -06)
6. आदिवासियों के बीच- श्रीचन्द्र जैन - शिवानी बक्स दिल्ली, 2007, पृष्ट 15
7. बाजत अनहद ढोल- मधुकर सिंह - वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2005, पृष्ट-06)
8. बाजत अनहद ढोल मधुकर सिंह - वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2005, पृष्ट 75
9. बाजत अनहद ढोल -मधुकर सिंह - वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2005, पृष्ट 75
10. पर्यावरण के प्रमुख आयाम- समीर शर्मा - ब्रज पब्लिकेशन बीकानेर - 2007, पृष्ट- 09
11. पर्यावरण के प्रमुख आयाम- समीर शर्मा - ब्रज पब्लिकेशन बीकानेर - 2007, पृष्ट-01

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
माउंट कार्मेल कॉलेज, स्वायत्त
बेंगलुरु कर्नाटक , फोनः 9441161687
G-mail: rathodpundlik@gmail.com

'गाँधीजी बोले थे' उपन्यास में इतिहास बोध; गाँधीवाद के परिप्रेक्ष्य में

अरुंधती मोहन

'गाँधीजी बोले थे' उपन्यास की भूमिका में अभिमन्यु अनत जी ने इस प्रकार लिखा है- इतिहास तो बड़े लोगों का उपन्यास होता है। उपन्यास छोटे लोगों का इतिहास। इतिहास शब्द नाम सुनते ही साधारण लोग यही विचार करते हैं कि इतिहास मानो ऐसा दस्तावेज़ है, जिनमें महानायक या नेता के जीवन चरित को चित्रित करता है। ऐतिहासिक ग्रंथों के नामकरण भी इन्हीं महानायकों के नामों से जाना जाता है ।इसप्रकार के इतिहास लेखन को हम old history (पुराना इतिहास) के दर्ज़े में डाल सकते हैं । लेकिन आधुनिक ज़माने में इतिहास का नायक बनता है आम आदमी ।नवीन इतिहास की अवधारणा के अनुसार हम पुराने इतिहास को खंडित करके विश्लेषित कर सकते हैं। इसप्रकार पुराने इतिहास की खूबियों एवं खामियों को सटीकता से चित्रित कर सकते हैं ।नवीन इतिहासकार कहते हैं कि ऐतिहासिक ग्रंथों को विखंडित करने से उनमें से नयी व्याख्याएँ ज़रूर सामने आती हैं । जिसप्रकार साहित्यिक पाठ अथवा टेक्स्ट को विखंडित करके नए मापदंडों से विश्लेषित करते हैं और पुनर्पाठ करते हैं उसीप्रकार इतिहास के अंतर्गत पिसे गए अनदेखे व्यक्तियों और घटनाओं को आधुनिक इतिहासकार एवं साहित्यकार विश्लेषण करते हैं। इसीलिए नवीन इतिहासबोध को हम उत्तराधुनिक सैद्धांतिकियों में रखा जा सकता है।

इतिहास बोध हर एक मानव के लिए अवश्य होना चाहिए।क्योंकि अतीत में जो कार्य संपन्न हुआ है,उनकी खूबियों और खामियों को परखकर वर्तमान की नींव डाला जा सकता है।यदि अतीत में समाज में प्रचलित एक प्रथा सकारात्मक हो तो अब नकारात्मक बन जाती है।उदाहरण के रूप में अतीत में शिक्षा केवल पुरुष जाति तक सीमित थी। लेकिन समाज में जब लोगों के विचार में बदलाव आए तब नारी की शिक्षा की प्रधानता पर लोग उन्मुख होने लगे ।एक और उदाहरण है शोषक शोषित संबंध। सदियों से विभिन्न तटके के लोग किसी स्वामी के अधीन शोषण का शिकार बनकर जी रहे हैं।लेकिन जब मानव की नज़रिया बदलने लगी,तब शोषित वर्ग संघर्ष करने लगे और अपने अधिकार के लिए लड़ने लगे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इतिहास बोध की आवश्यकता है।

अभिमन्यु अनत जी ने अपने उपन्यासों में सर्वहारा के जीवन चरित को लिखा है। उनके संपूर्ण उपन्यासों में प्राचीन मॉरीशस की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। उन घटनाओं में सरकार और कोठी की कथाओं का विवरण नहीं। बल्कि आम आदमी मजदूर की जीवन गाथा है । खुद उपन्यासकार कहते हैं मॉरीशस में आप्रवासी भारतीय मजदूर की 150 वीं वर्षागाँठ पर लिखा गया यह उपन्यास 'गाँधीजी बोले थे' लाल पसीना से आगे की कड़ी है। संपूर्ण उपन्यास को पढ़कर यह महसूस कर सकते हैं कि गांधीजी बोले थे उपन्यास में मॉरीशस में गांधीजी के आगमन जैसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन है। लेकिन उपन्यासकार यह सूचित करते हैं कि प्रत्येक देश के इतिहास में समय-समय पर धर्म की स्थापना के लिए किसी महान चरित्र का उदय होता है। ऐसा क्यों होता है? इसका उत्तर यह हो सकता है कि जनता में यही चेतना जाग उठने के लिए है कि शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध करना है। इससे युग परिवर्तन साकार होता है ।आम आदमी को अपने अधिकारों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

गाँधीजी बोले थे उपन्यास में नायक परकाश अपने बचपन से ही कोठी के अफसरों की क्रूरता का अनुभव करता है ।पिता की मृत्यु के बाद उनकी माता सीता परकाश का परवरिश करती है। उपन्यास के एक और

मुख्य पात्र मदन मज़दूर संघर्ष के नेता थे ,लेकिन एक संघर्ष के बीच मदन की आँखों की रोशनी सदा केलिए खत्म हो जाती है। मदन से नायक परकाश बहुत प्यार करता है और अपने पिता के समान प्रेम भी रखते हैं। मदन परकाश के माध्यम से कोठी के लोगोँ के भविष्य को उज्वल बनाना चाहते हैं। परकाश के अंदर पढ़ने और विद्रोह करने की आग की चिंगारियाँ मौजूद हैं।परकाश की ज़िंदगी बदलने का एक कारण बन जाता है मॉरीशस में गांधीजी का आगमन। उपन्यास के आदी से अंत तक गाँधीवाद का प्रभाव है। गाँधी के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक विचार उपन्यास का मेरुदंड है। लेकिन उपन्यास के कुछ संदर्भों में मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव भी है।

मॉरीशस में बसनेवाले मज़दूरों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। उन लोगों में सरकार और कोठी के विरुद्ध आवाज़ उड़ाने की हिम्मत नहीं थी। जब बस्ती के लोगों को पता चला कि गाँधीजी उनके लिए प्रेरणा शक्तिदेने आए हैं तब लोग एकसाथ जुड़कर गाँधी के भाषण सुनने के लिए जाते हैं। गाँधीजी उन लोगों के सामने कहते हैं “मैं तो अपनी जन्मभूमि को लौट रहा हूँ एक अजनबी की तरह, लेकिन मुझे विश्वास है कि कल के बाद मेरे देश का कोई भी आदमी इस धरती पर पहुँचकर अपने को अजनबी नहीं मानेगा। बल्कि इस मिट्टी पर पाँव रखते ही उसे ऐसा लगेगा कि वह अपने ही देश के किसी कोने में खड़ा है। आप लोग इस देश को उस स्वरूप में पाएंगे, मुझे पूरा यकीन है।”[1] इसप्रकार गाँधी ने मारीशस के भारतीयों को आत्मविश्वास दिया है। उनके शब्दों में राष्ट्र के प्रति प्रेम है। साथ ही स्वजन की पीड़ाओं में सहानुभूति भी है। गाँधीजी मारीशस आकर मज़दूरों से शिक्षा की महत्ता पर बातें करने लगे। उनके अनुसार मज़दूरों की मुक्तिके लिए शिक्षा की आवश्यकता है। विशेषतः अफसरों से बातें करने के लिए अंग्रेज़ी, फ्रेंच भाषाएँ सीखनी होंगी। उपन्यास के एक संदर्भ में मदन गाँधीजी के भाषण से अविभूत हो जाता है। उनके अनुसार गाँधीजी की बातें एक बहुत बड़ी सच्चाई थी।एक सत्य था।”[2]

उपन्यास में मदन गाँधीजी का प्रतिरूप है। जिसप्रकार गाँधीजी ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की कुरीतियों का विरोध किया ,उसीप्रकार मदन ने अपने आस पास के लोगों के मन की कुरीतियों को उखाड़ दिया है।मारीशस में आनेवाले विभिन्न जातियों के लोगों के बीच एक ही विचार था कि बेहतर ज़िन्दगी जीना।लेकिन पूंजीपतियों के षटयन्त्रों में कभी कभी लोग फँस जाते हैं।उनके मानस में जाति,धर्म आदि का विचार आ जाता है।जाति व्यवस्था के आधार विशेषकर दो बातों पर अधिक थे।जैसे विवाह संबंध और खानपान।

गोरे सरकार द्वारा गढ़ी हुई एक फँसी है धर्म परिवर्तन। सरकार चाहती है कि मज़दूर का ईसाई धर्म पर विश्वास रखना। गाँधीजी बोले थे उपन्यास में नालेताम्बी नामक पात्र गोरे अफसरों के प्रलोभन से अपना धर्म छोड़कर ईसाई धर्म अपनाता है। नालेताम्बी चाहते हैं कि बस्ती के लोगों को अपने प्रभाव से धर्म परिवर्तित करना। बस्ती के मगनलाल और रतनों को नालेताम्बी ईसाई बना चुका था। धर्म परिवर्तित लोग कोठियों के मजदूरों के विरुद्ध जाते थे। भारतीय इतिहास में धर्म परिवर्तन की सारी सबूत विद्यमान है। उपन्यास में मदन बस्ती के लोगों के बीच का जाति पांत और उच्च-नीच का भाव रोकना चाहता है । एक बार मदन कहते हैं “हम सभी मज़दूर हैं। अब मज़दूर न रहकर हिन्दू मुसलमान चमार दुसाध महतो क्षत्रिय ब्राह्मण के रूप में अलग अलग बंटकर और भी बदतर जीवन को आमंत्रित क्यों कर रहे हैं? क्या हिंदू या मुसलमान होना आदमी होने से बेहतर होता है?”[3]

अभिमन्यु अनत ने गाँधीजी बोले थे उपन्यास के माध्यम से गाँधी की आर्थिक दृष्टि का आशय स्पष्ट कर दिया है।पूँजीपति देशी वस्तुओं की बिक्री स्वेच्छा से करते रहते थे। माल की बनावट में आम आदमी की पसीना और रक्त सिंचित थीं। लेकिन कर्म के अनुसार उनको उचित मज़ूरी न मिलती थी। गाँधीजी ने देशी लोगों से कहा कि कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देना है। चमार,बढई, किसान सब देश की आर्थिक प्रगति के अंग हैं।उन्हें निचले स्तर

पर रखकर उनकी मेहनत को अनदेखा करना उचित नहीं।उपन्यास में परकाश कुटीर उद्योग पर विशेष ध्यान रखता है।मदन ने टोकरी निर्माण का आरंभ किया। मदन ने टोकरी बनाने का यह काम दो कारणों से शुरू किया था।पहला कारण तो यह था कि उससे खुद की कुछ आमदनी हो सकती थी और बस्ती के विकास में उसका अपना योगदान कुछ अधिक होने की संभावना थी।दूसरा कारण यह था कि आस पास की सभी बस्तियों में टोकरी और चटाई बुननेवालों को तंतवा चमार कहकर लोग उनका बहिष्कार करते प्रतीत हो रहे थे।"[4]

राजनीति का तात्पर्य यह है कि देश की जनता के लिए अच्छाई करना।गाँधीजी ने सत्याग्रह को अपनी राजनीति कहलाई। "महात्मा गाँधी के लिए सत्याग्रह विश्रामरहित सत्य की खोज है और सत्य तक पहुँचने का दृढ़ निश्चय है।"[5] सत्याग्रही प्रेम,त्याग,सहयोग पर विश्वास करता है। उनका विश्वास है कि इसी भावना से हम शोषकों को दबा सकते हैं। गाँधीजी बोले थे उपन्यास में परकाश सत्याग्रह का आह्वान करता है। लेकिन उपन्यास के एक संदर्भ में संघर्ष और सत्याग्रह के बीच का तनाव पात्रों के माध्यम से दर्शाया गया है। मदन नामक पात्र के मन में गाँधीजी के अहिंसा और सत्याग्रह को लेकर उलझन है। जब परकाश ने लोगों से कहा कि गोरे सरकार द्वारा गिरफ्तार मजदूरों को छुड़ाने को हमको सत्याग्रह करना चाहिए। तब मदन पूछते हैं सत्याग्रह जो हम सदियों से कर रहे हैं ,बिना मुँह खोलकर। परकाश मदन की सोच को ठीक करता है। मॉरीशस में आकार गाँधी ने दो बातों को टोक दिया। एक है उचित शिक्षा की व्यवस्था और दूसरा राजनीति में भाग लेना। "इन्हीं दो हथियारों से अपने हक़ की लड़ाई लड़ी जा सकती हैं । बिना राजनीतिक चेतना के अत्याचारों और शोषण को रोका नहीं जा सकता। राजनीति में भाग लेना है । विधान सभा तक पहुँचना है।"[6] मदन और परकाश गाँधीजी के विचारों को पूर्णतया आत्मसात करके उनको निपटाने में समर्थ बन जाते हैं।

निष्कर्ष : मारीशस में गाँधीजी के आगमन भारतीयों पर ऐसा प्रभाव डालता है जैसा कि लंका पार करने को जामवंत हनुमान की प्रेरणा शक्तिबन जाता है। यहाँ गाँधीजी जामवंत की भूमिका निभाते हैं। गाँधीजी ने अहिंसा को अपना हथियार बनाया है। "अपने मन, वचन, कर्म से किसी दूसरे के मन,वचन और कर्म पर आघात न करना तथा किसी का जीवन न लेना ही अहिंसा है।"[7] इस प्रकार अहिंसा, सादगी, सत्य, सविनय, संघर्ष, आंदोलन आदि गाँधीवादी दार्शनिक तत्वों के अवलंबन से मॉरीशस के परावलंबी लोग स्वावलंबी बनकर विजय हासिल करते हैं।

संदर्भ

1. गाँधीजी बोले थे,अभिमन्यु अनत,राजकमल पेपरबैक्स,नयी दिल्ली,2008, पृ सं 71
2. वही,पृ सं 78
3. वही,पृ सं 84
4. वही,पृ सं 119
5. young india,19 मार्च 1925
6. गाँधीजी बोले थे ,पृ सं 158
7. gandhian thought,पृ सं 75

सहायक ग्रन्थ सूची

1. गाँधीजी बोले थे, अभिमन्तु अनत, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली ,2008
2. गाँधी दृष्टि के विविध आयाम, शंभू जोशी, मिथिलेश, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली,2020
3. गाँधी, अम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, डॉ रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली,2000
4. गाँधीवादी दर्शन, नया विश्व, नए पड़ाव, डॉ रवींद्र कुमार,कल्पाज़ पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली

शोध छात्रा, हिंदी विभाग
केरल विश्वविद्यालय
कार्यवट्टम कैंपस, तिरुवनंतपुरम

भारत की मंदिर कलाओं में क्वीर : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

अभिरामी.सी.जे

संस्कृति, प्रकृति में हमारे जीने और सोचने के तरीके को अभिव्यक्त करती है, जिसमें धर्म, भाषा, रीति रिवाज़, कला और साहित्य, महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । विश्व की प्राचीन संस्कृतियों की अनमोल धरोहर है भारतीय संस्कृति, जहाँ हमें वसुधैव कुटुबंकम की भावना, अनेकता में एकता, प्राचीनता, निरंतरता, सहनशीलता आदि विशिष्ट एवं अनोखे मूल्यों को देख सकते है। भारत वास्तव में विविधता का केंद्र है जो एक समृद्ध विरासत और आध्यात्मिकता का दावा करता है। भारत जनता ने हिन्दू धर्म के विश्वास एवं सोच को पवित्र माना है । हिन्दू धर्म में गहराई से देखा जाए तो रामायण और महाभारत, भारत के दो ऐसे महानतम महाकाव्य हैं जिनमें हिंदू जनता की सोच और विश्वास प्रणाली को प्रभावित किया है। धर्म एवं मूल्यों को मान्यता देने के कारण भारत को दुनिया का सबसे रू ढ़िवादी देश माना गया है। इसलिए भारत में समलैंगिकता, क्वीर आदि को वर्जित किया गया है। समलैंगिकता एक प्राकृतिक व्यवहार है जो व्यक्ति की पहचान के साथ जुड़ा हुआ है। यह कोई ऐसी चीज नहीं है जो मनुष्य में कृत्रिम रूप से समाविष्ट हो। भारत में समलैंगिकता एक पश्चिमी अवधारणा थी, यह मिथक भारतीय समाज में सालों तक बना रहा। इसका मुख्य कारण ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन रहा। विक्टोरियन-युग के विचार में समलैंगिकता सबसे बुरे पापों में से एक है जो एक व्यक्ति कर सकता है। इस वजह से अंग्रेजों ने भारत में आईपीसी की धारा 377 बनाई। भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code- IPC) में ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा 1860 में धारा 377 को भारत में लागू किया। इस धारा के तहत प्राकृतिक यौन संबध के अलवा अन्य यौन गतिविधियों को अपराध की श्रेणी में रखा गया है। धारा 377 "भारतीय दंड संहिता' का हिस्सा है, जिसमें समलैंगिक सेक्स को अपराध माना है। ब्रिटिश साम्राज्य के औपनिवेशिक दंड संहिता में धारा 377 मौजूद है। लेकिन धारा 377 को सबसे पहले भारत ने लागू तथा लागू करने वाले ब्रिटिश शासन ने खुद ही अपने देश से 1967 में धारा 377 को अपराध की श्रेणी से बहिष्कृत कर दिया"[1]। लेकिन हमारे पवित्र ग्रंन्थों, पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं में देखे जाए तो हमें साफ पता चलता है कि पौराणिक काल से ही हमारे बीच समलैंगिकता मौजूद रही है। कहते है कि तेरहवीं शताब्दी से पहले सेक्स की अवधारणा एवं समलैंगिकता को भारत में स्वीकृति थी। जिसका प्रमाण हमें भारत में स्थित हिन्दू मंदिरों से पाया जाता है, इससे हम यह साबित करता है कि, साहित्य में जो कुछ भी लिखा गया था वह किसी की बनी हुई कहानी नहीं थी, वह सच्ची घटना पर आश्रित है जिसे पूर्वजों ने माना और स्वीकारा है।

बीज शब्द : क्वीर, समलैंगिकता, धर्म, मंदिर, भारतीय मूर्तिकला, भारतीय संस्कृति, भारत, मंदिरों के अनमोल विरासत है और मंदिर पवित्रता की भूमि है। भारत के मंदिर भव्यता और आध्यात्मिक मान्याताओं के लिए लोकप्रिय है। हिंदू धर्म में मंदिरों का बहुत ही खास महत्व होता है। भगवान की उपस्थिति की पूजा एवं साधना और भारतीय संस्कृति को बनाए रखने में मंदिर अहम भूमिका निभाती है। सेक्स, नग्नता, समलैंगिकता आदि विषय जो हाल के दिनों में वर्जित माने जाते हैं, उनकी चर्चा और प्रतिनिधित्व बहुत उदार तरीके से पौराणिक समय में किया जाता था । उपमहाद्वीप के राजा इतने उदार थे कि उन्होंने विशाल मंदिरों का निर्माण किया और कामसूत्र में वर्णित कामुक आकृतियों और यौन स्थितियों को उकेरा। उस समय की अवधि में, सेक्स को भगवान तक पहुँचने के रास्ता में से एक माना जाता था। मंदिरों में पाशविकता, समलैंगिकता और नग्नता की भी चर्चा की गई और उन्हें उकेरा गया। मंदिरों में, मंदिर की दीवार पर मूर्तियों और मूर्तियों ने आम जनता को बिना पोशाक के दिखाया और कुछ मामलों में, उन्हें पूरी तरह से नग्न दिखाया गया। भारतीय कला मुख्यतः लोगों की

धार्मिक मान्यताओं का मूर्त रूप रही है। पौराणिक समय से सेक्स को जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा मानता था। इसका सजीव चित्रण मंदिरों के दिवारों में पाया जाता है। "पौराणिक समय में मंदिर एक ऐसी जगह है जहाँ पर लोगों को हर चीज़ का अध्ययन कराता है जिसमें यौन शिक्षा भी मौजूद रही ह"[2]।

तांत्रिक धर्म संबन्धी मान्याताएँ : प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी के बीच हिन्दु धर्म में एक विद्रोहात्मक भावना के रूप में तांत्रिक धर्म का आर्विभाव हुआ। तांत्रिक धर्म और हिन्दू धर्म अद्वैतता पर विश्वास करते हैं लेकिन इस समझ को प्राप्त करने के लिए दोनों अलग दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। हिन्दू धर्म बौद्धिक या भक्ति प्रणाली के माध्यम से अद्वैतता प्राप्त करता है। जबकि तांत्रिक धर्म में शारीरिक यौन क्रिया के माध्यम से अद्वैतता को अर्जित करता है। तंत्र मानता है कि पुरुष और स्त्री के बीच का यौन संबध से ही अद्वैतता प्राप्त होता है। दुनिया के प्रमुख धर्मों में कामुकता (तांत्रिक) को आध्यात्मिक पथ से विचलित करने वाले धर्म के रूप में मानते हैं। दूसरी ओर, कुछ आध्यात्मिक परंपराएँ तांत्रिक धर्म को अपनी साधनाओं में एकीकृत करती हैं उनके अनुसार तांत्रिक धर्म जो है जीवन के अभिन्न अंग है जो व्यक्तिको आनंद प्राप्त करने के लिए सहायक है। "तंत्र एक आध्यात्मिक पद्धति या विज्ञान है जो अनुभव, विशेष रूप से मन के अनुभव पर केंद्रित है"[3] । जिसमें हमारी धारणाओं, भावनाओं, विचारों आदि शामिल हैं। तंत्र मौलिक जागरू कता प्रधान करता है। तंत्र का लक्ष्य सीधे शुद्ध जागरूकता का अनुभव करना है। गुप्त काल में तांत्रिक धर्म को लोकप्रियता मिली और पाल साम्राज्य ने तांत्रिक धर्म को आधिकारिक धर्म के रूप में अपनाया। चंडाल साम्राज्य, पाल साम्राज्य तांत्रिक विचारों से प्रभावित थे। इसलिए चंडाल साम्राज्य में स्थित खजुराहो के मंदिरों के बाहर तंत्र प्रेरित कामुक मूर्तियाँ देख सकते हैं। खजुराहो को चंडालों की धार्मिक राजधानी माना जाता है।

भारत की मंदिर कला : क्वीर

खजुराहो मंदिर : खजुराहो मंदिरों के शिल्पों की विशिष्टता यह है कि मंदिरों के दिवारों में विस्तृत एवं गंभीर रूप में मूर्तियों को दिखाने का प्रयास किया गया है। मंदिरों के दिवारों में हिन्दू धर्म (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) पर आधारित मानव जीवन के लक्ष्यों को मूर्तियों के ज़रिए अंकित किया गया है। खजुराहो की ये मूर्तियां तांत्रिक साधना में प्रयुक्त संभोग मुद्राओं को दर्शाती हैं। हिंदू धार्मिक प्रणाली के कई पहलू अभी भी खजुराहो के नक्काशियों में देख सकते हैं, और वह विशेष रूप से तांत्रिक तत्वों पर केंद्रित है इसलिए वह लोगों को एक विशिष्ट कामुक अनुभव प्रदान करने में सफल हैं। खुजराहो के 22 मंदिरों में से कंदरिया महादेव मंदिर अपने कामुक मूर्तियों की प्रदर्शन के लिए विख्यात है। कंदरिया महादेव मंदिर खजुराहो का सबसे बडा और उन्नत मंदिर है। लेकिन इस मंदिर के साथ जुडी अन्य मंदिरों के अस्थित्व सदियों पूर्व खो चुके थे। बाकी मंदिरों की अपेक्षा कंदरिया महादेव मंदिर में हमें यौन एवं समलैंगिक संबधित मूर्तियों को विशाल रूप से देख सकते है। इस मंदिर के बाह्य दीवारों पर नर- किन्नर, देवी-देवता, सूर-सुंदरी मूर्तियों से भरपूर है। इस मंदिर के मध्य दिवारों में समलैंगिक संबधित मूर्तियों, यौन संभोग मूर्तियों को चित्रित किए गए है । खजुराहो के मंतगेश्वर मंदिर में नृत्य, संगीत, युद्ध जैसे जीवन की कला एवं परंपराओं को दर्शाती है साथ ही साथ तंत्र प्रेरित मैथुन मूर्तियों की भी कलाकृति देख सकते है। चित्रगुप्त एवं जगदंबी मंदिरों के दिवारों पर समलैंगिक दृश्य कला को विस्तार पूर्ण ठंग से चित्रित किया है। खजुराहो के मंदिरों में कई तरह की कलाकृतियाँ हैं, जिनमें से केवल दस प्रतिशत ही यौन या कामुक कला है। इन मंदिरों की कलाएँ जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव जीवन के कई पहलुओं का दृश्यबिम्ब है जैसे शिक्षा, विवाह, और कई अन्य मूल्यों और गतिविधियाँ जो हिंदू धर्म में महत्वपूर्ण माना जाता है। 900- 1300 ई डी के बीच बनी गई खजुराहो मंदिर, यूनेस्को की विश्व धरोहर (UNESCO World Heritage) में सूचीबद्ध है।

कोणार्क सूर्य मंदिर : गंगा वंश के राजा नरसिंहदास द्वारा निर्मित मंदिर है कोणार्क सूर्य मंदिर । तेरहवीं शताब्दी में निर्मित यह मंदिर यूनेस्को द्वारा वैश्विक धरोहर की सूचि में शामिल है। भारत के सात अजूबों (Seven Wonders) के एक के रूप में भी यह जाना जाता है। सूर्य मंदिर विभिन्न प्रकार की मूर्तियों से भरपूर हैं और हर एक मूर्तियों के

अलग- अलग अर्थ है। इसमें कुछ समान लिंग की मूर्तियाँ देख सकते हैं जहाँ स्त्री पुरुष एवं समानीय लिंग व्यक्तियों के यौन गतिविधियों को दर्शाने का प्रयास किया है। समलैंगिक यौन संभोग के विविध रूप, बहुविवाह, गर्भावस्था के दौरान संभोग, स्वयंभोग, समान लिंग के यौन उत्तेजना आदि को पत्थरों पर स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है। कोणार्क की मूर्तियाँ निर्माण की दृष्टि से पूर्ण, सुन्दर, गतिशील, भव्य और सहज भाव- भंगिमा वाली हैं। इनमें विषयवस्तु का वैविध्य देव, अप्सरा, नर्तकी एवं वाद्य- वादन करती नारियों, रतिक्रिया से सम्बन्धित आकृतियों और व्यालों की मूर्तियों में देखने को मिलता है। विविध रूपों वाले व्यालों का अंकन तत्कालीन खजुराहो की व्याल मूर्तियों का स्मरण कराता है । मन्दिर की मूर्तियाँ जीवन्त, आकर्षक और विषयजनित सौन्दर्यवाली है ।

विरुपाक्ष मंदिर : कर्नाटका, हम्पी में सिथ्त विरुपाक्ष मंदिर एक यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल है, मंदिर की दीवारों पर कामुक कल्पना एवं सुंदर यौन पूर्ण चित्रकला के लिए व्यापक रूप से जाना जाता है। यह तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित सबसे पुराने मंदिरों में से एक है। मंदिर की बाहरी दिवारें कलाकृतियों से पूर्ण हैं, जिसमें सबसे प्रसिद्ध दृश्य एक नग्न महिला, और उस पर प्रशंसा करने वाले लोगों का है साथ ही समलैंगिक स्त्री, पुरुष की मूर्तियों का भी चित्रण अंकित की है।

रणकपुर जैन मंदिर : राजास्थान में स्थित रणकपुर जैन मंदिर भी कामुक चित्रों के लिए प्रसिद्ध है। मंदिर के दिवारों पर यौन संबधित चित्रों एवं अन्य लैंगिक दृश्य भी देख सकते है। साथ ही साथ अलग अलग यौन मूर्तियों और चिह्नों की नक्काशी इस मंदिर को और भी खुबसूरत बनाती है। मध्य प्रदेश के कंदरिया महादेव मंदिर कामुक मूर्तियों से भरा पड़ा है । विभिन्न हिंदू धर्म मान्यताओं पर जोर देने वाली कई व्याख्याएँ भी मौजूद हैं। उनमें से एक का कहना है कि मंदिर में प्रवेश करने से पहले आपको अपनी वासना और इच्छाओं को पीछे छोड़ देना चाहिए, जो शायद बताता है कि मंदिरों में सेक्स की नक्काशी क्यों नहीं होती है। मंदिरों की केवल बाहरी दीवारें समलैंगिक महिलाओं एवं मैथुन-प्रेमी जोड़ों को दर्शाती हैं । यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के हिंदू दर्शन का प्रतिनिधित्व है। लक्ष्मण मंदिर में पुरुषों के बीच अनैतिक संबंध बनाते हुए चित्रित किया है। छत्तीसगढ़ के भोरमदेव मंदिर की बनावट खजुराहो तथा कोणार्क के मंदिर के समान है जिसके कारण लोग इस मंदिर को 'छत्तीसगढ का खजुराहो' भी कहते हैं। मंदिर में दो पुरुषों को आपसी ऑरल सेक्स में लगे हुए रूप में प्रस्तुत किया है और कर्नाटक के बगली में कल्लेश्वर मंदिर में भी यही रूप है। इन्हीं मूर्तियों या चित्रकलाओं से साफ पता चलता है कि पौराणिक समय से समलैंगिक रिश्ता, क्वीर समाज भारत में मौजूद रही है। हिन्दु धर्म से अतिरिक्तजैन मंदिरों में भी इसका चित्रण देख सकते हैं। इन सारी मूर्तियों के निर्माण उस समय में किया गया है जब तांत्रिक धर्म लोकप्रिय थे। धर्म के 4 स्तंभ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) समान रूप में दिखाने का श्रेय मंदिरों से हुई है। भारत के ज्यादात्तर लोग मंदिरों में प्रार्थना करने के लिए जाता है। इसलिए कुछ लोगों का कहना है कि मंदिरों पर कामुक चित्रकला का प्रदर्शन लोगों को यौन शिक्षा देने के लिए था।

समलैंगिकता उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव जाति। हिंदुओं में समलैंगिक प्रेम की एक लंबी परंपरा है। कामसूत्र का एक पूरा आध्याय 'औपरिषडका' समलैंगिकता एवं क्वीर पर प्रतिपादित है जिसमें समलैंगिक स्त्री (लेस्बीयन) को स्वैरिणी कहते है और समलैंगिक पुरुष (गे) को 'क्लीबास' कहते है। इन सारी घटनाओं से यह साफ साफ कह सकती है कि भारत में समलैंगिकता पौराणिक काल से मौजूद है।

निष्कर्षतः यह माना जा सकता है कि प्राचीन भारत ने एक ऐसा मानदंड बना दिया था कि एक सभ्य समाज कैसे शासित किया जाना चाहिए था। प्राचीन भारत सबसे खुले विचारों वाले और उदार समाजों में से एक हुआ करता था जहाँ पर सेक्स, नग्नता, समलैंगिकता आदि विषय खुलकर चर्चा होती थी, जो आज के समय में पाबंदित है। उस समय समाज के विभिन्न वर्गों के बीच

बेहतर तालमेल रहा है जिसका स्पष्ट चित्रण रामायण, महाभारत, लोककथा आदि से प्राप्त होता है जहाँ किन्नर प्रकृति एवं समलैंगिक कहानियाँ निहित है। मंदिर के इन कलाकृति एवं मूर्ति से यह साफ कह सकता है कि किसी न किसी रूप में समलैंगिक गतिविधियाँ प्राचीन भारत में मौजूद थीं। सेक्स भी मानव जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है। भारत के मंदिर की दीवारों पर चित्रित इन सेक्स मूर्तियां से हम यह संदेश को समझना है कि संसार में कामभावना कितना महत्वपूर्ण है । इस प्राकृतिक वास्तविकता को भारत ही नहीं, सभी प्राचीन समाजों ने स्वीकार किया था। वे आमतौर पर सेक्स के सभी रूपों को मंजूरी देते थे, भले ही 'विषमलैंगिकता' स्पष्ट रूप से मानक था। क्वीर समाज के लोगों के प्रति संवेदनशीलता बढ़े और लोग इन्हें हीन भावना से न देखकर इन्हें भी अपने समाज का ही एक अंग समझें।

सहायक गन्थसूची

1. 'किन्नर विमर्श-अस्तित्व की तलाश में सिमरन' संपादक: नारायण मोबरसा नरलाई, पृष्ठ संख्या: 100-104, हंस प्रकाशन, 2022
2. रामनाथ मिश्र, भारतीय मूर्तिकला का इतिहास पृ-98, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी,1991
3. मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला, डॉ. मार्सतिनंदन तिवारी/ डॉ कमल गिरि, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी, 1991, पृ.सं: 19)

संदर्भ सूची

1. शकुन्तला देवी, द वेल्ड ऑफ होमोसेक्शुअल, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1978
2. देवदत्त पट्टनायक, धर्म और समलैंगिकता, पेंगुइन बुक्स, 2022, page no: 30-38
3. डॉ इन्दु के वी , किन्नर ओर फिल्म समकालीन फिल्मों में अभिव्यक्तकिन्नर समस्याएँ, प्रवदा बुक्स, कोल्लम, 2022, page no:11
4. डॉ. मार्सतिनंदन तिवारी , डॉ कमल गिरि, मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी,1991
5. Vanita, Ruth, and Kidwai, Saleem,Same-Sex Love in India. Palgrave Publishers Ltd, 2001.
6. David Raezer and Jennifer Raezer, The temples of khajuraho, Approach Guides, New York, 2015
7. Huntington L. Susan, Ancient India Buddhist, Hindu, Jain , weather hill, Newyork, Tokyo,
8. Wendy Doniger, Reading the Kamasutra, Speaking timing publishing, New Delhi2015
1. https://www.thequint.com/voices/opinion/homosexuality-rss-ancient-indian-culture-section-377
2. https://sambadenglish.com/konark-sun-temple-a-sex-symbol/
3. https://www.mptourism.com/destination-khajuraho.php
4. https://www.cntraveller.in/story/what-do-you-see-when-you-travel-through-india-with-a-queer-gaze/
5. https://www.tantra-essence.com/2017/02/magic-tantra-erotic-arts/
6. https://www.youtube.com/watch?v=jCgUJe8SnKw
7 https://www.youtube.com/watch?v=Y0YjviIYvl8
8. https://hindi.webdunia.com/sanatan-dharma-article/khajuraho-temple-kamasutra-115011500080_1.html

शोधछात्रा, हिन्दी विभाग
अविनाशलिंगम इनस्टिट्यूट फॉर होम
सैन्स एण्ड हयर एजुकेशन फॉर विमेन
कोयम्बत्तूर- 641043
Ph no: 9995931963
Email id: abhirami97june@gmail.com

पृथ्वीराज रासो : एक ऐतिहासिक लोक - आख्यान

डॉ. राजेश कुमार

हिन्दी साहित्य में रासक ग्रंथों की अभिव्यक्तिअनेक रूपों में दिखाई देती है। अब तक उपलब्ध रासक साहित्य में कहीं तो इसमें धार्मिक दृष्टि की प्रधानता है तो कहीं इसमें वीरगाथाओं का बाहुल्य है। यद्यपि कुछ जैन रासक काव्यों में भी चरित नायक के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है, परन्तु उन कृतियों की समाप्ति अंततः वैराग्य या शांत रस में हुई है। उपर्युक्तदोनों विषयों से अलग हटकर कुछ कवियों ने श्रृंगारपरक रासों काव्य की भी रचना की, जिनकी कथावस्तु प्रेम, वियोग एवं पुनर्मिलन पर आधारित है। इस प्रकार रासक काव्य कृतियों के इस वैविध्य को देखते हुए काव्य विषय की दृष्टि से इन्हें प्रमुख वर्गों में विभक्त कर सकते हैं- 1. वीरगाथात्मक रासो काव्य, 2. श्रृंगारपरक काव्य, 3. धार्मिक तथा उपदेशमूलक रासो काव्य। परन्तु, आदिकालीन काव्य की विशेष प्रवृति वीरगाथात्मक रासक काव्य लेखन थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो इसे प्रधान प्रवृति मानकर इस काल का नामकरण ही 'वीरगाथा काल' कर दिया था।

इन वीरगाथात्मक रासो काव्य में ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा नहीं हो पायी है, क्योंकि यह राजाओं का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करता है। इसमें इतिहास तथा कल्पना दोनों का समावेश है, लेकिन मुख्य रूप से काल्पनिक वर्णनों की ही अधिकता है। चूंकि यह ग्रंथ वर्णन प्रधान है, इस कारण इन कवियों का सहज ही काल्पनिक घटनाओं और अत्युक्तियों का सहारा लेना पड़ा है। वस्तुतः इन ग्रंथों को ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन करना भी उचित नहीं है, क्योंकि ये इतिहास न होकर काव्य ग्रंथ थे।

हिन्दी साहित्य की रासो काव्य परंपरा का प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' है। आचार्य शुक्ल ने इसे हिंदी का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया है। इसके कुछ अंशों का अनुवाद कर्नल टॉड तथा डॉ. हार्नले ने किया है। इस महाकाव्य के रचयिता चंदरबरदाई हैं, जो दिल्ली के शासक पृथ्वीराज चौहान के सामंत तथा राज कवि थे। कहा जाता है कि चंदरबरदाई एक मित्र की भांति सदैव पृथ्वीराज के साथ रहते थे। अतएव उन्होंने इस कृति में जो भी वर्णन किया है वह उनके द्वारा देखा तथा अनुभव किया हुआ था। काव्य रूप की दृष्टि से रासो प्राकृत अपभ्रंश के प्रबंध काव्यों की परम्परा में है और यह संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा का अनुशासन नहीं कर सकता। मूल रूप से देखा जाये तो यह एक प्रकार से अपने ऐतिहासिक परिदृश्य में लोक-आख्यान है और साहित्यिक परम्परा के आलोक में ही इसका अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसका मुख्य कारण इसके खण्डों का सही कथा-क्रम में नहीं होना है, ये क्रम घटनाओं के आधार पर हैं न कि कथा के आधार पर। इसमें कुल मिलाकर 12 खंण्ड या शीर्षक हैं, जैसे- मंगलाचरण, जयचंद का राजसूय यज्ञ, और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान, कयमास वध, पृथ्वीराज का कन्नौज गमन, पृथ्वीराज का कन्नौज में प्रकट होना, संयोगिता परिणय, पृथ्वीराज-जयचंद युद्ध-1, पृथ्वीराज-जयचंद युद्ध-2, पृथ्वीराज संयोगिता का केलि विलास और षड्ऋतु, पृथ्वीराज का उद्बोधन, शहाबुद्दीन का अंत। मूल प्रश्न उसके रूप प्रकारों में भिन्नता के कारण है जिनमें अनेक प्रक्षेपों का आना है। इसी कारण उनमें रचनाकाल के संबंध में ऐतिहासिक दृष्टि से एकरूपता दिखाई नहीं देती है।

भाव पक्ष की दृष्टि से इसकी सबसे प्रभावशाली विशेषता यह है कि इसमें मार्मिक प्रसंगों का अत्यधिक स्वाभाविक वर्णन हुआ है। इसकी दृष्टि से यह काव्य युद्ध प्रधान वीर काव्य है। युद्ध वर्णनों में कवि ने पृथ्वीराज के युद्ध-कौशल, शौर्य एवं पराक्रम का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। शहाबुद्दीन की सेना के साथ हुए पृथ्वीराज के युद्ध का वर्णन करते हुए कवि पृथ्वीराज के युद्ध-कौशल की

विशेषता बताते हुए कहते हैं- ष्यकि रहे सूर कौतिग गिगन, रगन-मगर भई श्रोन घर।/हदि हरषि वीर जग्गे हुलस, हुरेड रंगि नवरत वर।।

अर्थात पृथ्वीराज चौहान के युद्ध कौशल एवं वीरता को देखकर सूर्य भी स्तक्यित होकर ठहर गया। इस युद्ध में हुए नरसंहार से सारी धरती रक्त से भर गई। ऐसे युद्ध को देखकर वीर योद्धा उल्लास से भर उठे तथा उनके चेहरों पर प्रसन्नता से रक्तकी लालिमा छा गई।

पृथ्वीराज रासो के रचना काल को लेकर आज भी स्थिति स्पष्ट नहीं है, परन्तु अकबर के समय में रचित 'सुर्जन चरित' 'आईने अकबरी' आदि ग्रंथों से सिद्ध है कि तत्कालीन समाज चंद और उसके काव्य से भली-भांति परिचित था। इसलिए प्रश्न केवल इतना ही रहता है कि सोलहवीं शताब्दी के कितने समय पूर्व पृथ्वीराज रासो की रचना हुई। हिन्दी साहित्य में इस ग्रंथ की प्रामाणिकता को लेकर आज तक प्रश्न ज्यों का त्यों बना हुआ है और इसके लिए संस्कृत के कवि जयानक द्वारा रचित ग्रंथ 'पृथ्वीराज विजय' के साथ इसकी तिथियों का मिलान किया जाता है। परन्तु, इन सबके बावजूद इस ग्रंथ के आख्यान की लोकप्रियता और पाठकों में रूचि निरन्तर बनी हुई है। इसका मुख्य कारण इसमें साहित्य के साथ-साथ युगीन परिस्थितियों का भी योगदान है। यही वजह है कि यह रचना अपने युग और युगनायक की गाथा बनकर भारतीय साहित्य के सबसे प्रबल रचना हुई। रासो परम्परा के विकास में पृथ्वीराज रासो हमारी जिज्ञासाओं को निरन्तर बढ़ाता है। जिस रचनाकाल को लेकर विद्वानों में मत्तभेद हैं उसका निराकरण इस रूप में किया जा सकता है कि पृथ्वीराज रासो ग्रंथ की तिथियाँ विक्रमी संवत के अनुसार नहीं बल्कि आनंद संवत के अनुसार उल्लिखित हैं। इसके समर्थन में विष्णुलाल पण्ड्या ने रासो के एक पद का उल्लेख किया है - एकादश सै पंचदह विक्रम साक अनंद / तिहि रिपुजय पुरहरन को भए पृथिराज नरिंद।।

इस पद के अनुसार विक्रम साक अनंद का अर्थ है नब्बे वर्ष। इसलिए विक्रमी संवत में नब्बे घटा देने से आनंद संवत बनते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार विष्णुलाल पण्ड्या ने विक्रम साक अनंद का अर्थ किया अ उ शून्य और नंद उ 9 अर्थात् 90 रहित विक्रम संवत।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस ग्रंथ का पाठ और विश्लेषण आदिकाल की साहित्यिक परम्परा और कथात्मक रूढ़ियों के आधार पर करने का सुझाव दिया है। उनके अनुसार रासो के वर्तमान रूप को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि मूल रासो में भी शुक और शुकी के संवाद की योजना रही होगी। मेरा अनुमान है कि असल में मामूली से इंगित को पकड़कर हम मूल रूपों के कुछ रूप का अंदाजा लगा सकते हैं। आमतौर पर मध्यकालीन प्रबंध काव्यों जैसे मानस में शंकर-पार्वती, काकभुशुंडि के माध्यम से देखा गया है कि दो पात्रों के संवाद से आख्यान की शुरूआत होती है और इसी का उपक्रम हम 'पृथ्वीराज रासो' में देख सकते हैं- सुकी कहै सुक संभरौ कहौ कथापति प्रान/पृथु भोरा भीमंग पहु किये हुअ वैर वितान/जंपि सुकी सुक पेम करि आइ अंत जो बत्त/इंछिनि पिथ्यह व्याह विधि सुख्ख सुनंते गत्त/पुच्छ कथा सुक कहो समह गंध्रवी सुप्तेमहि/स्रवन मंमि संजोगि राज सम धरी सुनेमहि।।

इस ग्रंथ के मूल रूप का विचार करते हुए इसके संपादक माताप्रसाद गुप्त का मानना है कि मूल रासो में उक्तिशृंखला और छंदशृंखला की पद्धति थी जो कि आज भी रासो के लघुत्तम पाठ में उक्तिऔर छंद की यह शृंखला आज भी सुरक्षित है।

संबंधित ग्रंथ का भाषायी विश्लेषण करने से पहले हमें स्वयं रासोकार की उक्ति को समझने की आवश्यकता है जहाँ पर वे इसे स्पष्ट करते हैं- षड्भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया। कहा जा सकता है कि 'षड्भाषा' एक उक्तिरूढ़ि है जिसमें व्याकरणिक रूप से कोई एक भाषा नहीं होती है बल्कि उसमें देशज या देशभाषा के अनेक शब्द शामिल होते हैं। यह आम बोलचाल के व्यवहारों के अधिक निकट होती है, जिसमें भिन्नता स्वाभाविक है। इसलिए

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि "भाषा की कसौटी पर कसते हैं तो और भी निराश होना पड़ता है क्योंकि वह बिल्कुल बेठिकाने है- उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं। दोहों की और कुछ-कुछ कवित्तों (छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे छंदों मे तो कहीं कहीं अनुस्वरान्त शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है जैसे किसी ने संस्कृत प्राकृत की नकल की है।" आगे चलकर स्वयं दिनकर इस संबंध में भिखारीदास के 'काव्य-निर्णय' का दोहा उद्दृत करते हैं - ब्रज मागधी मिलै अमर नाग यवन भाखानी।/सहज फारसी हू मिलैं षड् विधि कहत बखान।। अर्थात् ब्रज, मागधी, अमर (संस्कृत), नाग (प्राकृत-अपभ्रंश), यवन (तुर्की) और फारसी जब एक साथ और सहज रूप में मिलती हैं तो वही षडभाषा कहलाती है। पृथ्वीराज रासो की भाषा मूलतः ब्रजभाषा का वह रूप प्रतीत होती है, जिसमें राजस्थानी बोली का मिश्रण है। इसे पिंगल कहते हैं। कवि का भाषा पर इतना अधिकार था कि उसने कई भाषाओं के शब्दों को लेकर भाषा का निर्माण किया है। इसलिए रासो की भाषा को शुद्ध साहित्यिक भाषा नहीं माना जाता। छंदों की दृष्टि से इस ग्रंथ में पर्याप्त विविधता है। इसमें मूलतः गाथा, कवित्त, दोहा, और सहिक छंदों की प्रधानता है। कहीं-कहीं एक ही वर्णन में अनेक छंद दिखाई पड़ते हैं। कवि ने संपूर्ण काव्य के प्रणयन में लगभग 68 छंदों का प्रयोग किया है। काव्य-शैली की दृष्टि से कवि ने ओज-शक्तिप्रदर्शन को प्रमुखता दी है। इस प्रकार पृथ्वीराज रासो काव्य के प्रत्येक गुण को स्वयं में समाहित करता है तथा श्रेष्ठ काव्य की श्रेणी में आता है।

डॉ. नामवर का इस संबंध में कथन है कि वस्तुतः अपभ्रंश के बाद प्रायः पश्चिमी भारत में दो मुख्य भाषाएँ उत्पन्न हुई- दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान में डिंगल तथा पूर्वी राजस्थान और ब्रजमंडल में पिंगल। काव्य परम्परा की दृष्टि से डिंगल में रचना करने वाले प्रायः चारण हुए और पिंगल के कृती कवि प्रायः भाट। पृथ्वीराज रासो पूर्वी राजस्थान में मूलतः 'चंदबलिद्द भट्ट' द्वारा अपभ्रंशोत्तर युग में रचा गया और अनेक प्रेक्षपों के साथ अपने विभिन्न रूपान्तरों में भी वह पिंगल की रचना है।

हिन्दी साहित्य में 'पृथ्वीराज रासो' जिस भी रूप में हमारे सामने है उसे कोरा काल्पनिक, जाली या भट्ट-भणन्त नहीं कहा जा सकता। इसकी समस्या का समाधान जहाँ एक ओर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इसकी साहित्यिक परम्परा और काव्योत्कर्ष की दृष्टि से करना चाहते हैं वहीं डॉ. माताप्रसाद गुप्त पाठालोचन की दृष्टि से। यह एक साहित्यिक रचना है कोई इतिहास ग्रंथ नहीं। अतः साहित्यिक रचना व इतिहास मे मूल भेद ही कल्पना का समावेश होता है। अतः इस रचना को इतिहास का चश्मा लगा कर नहीं देखा जाना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि यह ग्रंथ एक साथ हमें ऐतिहासिक आख्यान के साथ-साथ छंदसिक वैविध्य (कवित्त अर्थात् छप्पय, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा, आर्या आदि), भाषा की समाहार शक्ति और महाकाव्य के रूप के कारण भारतीय साहित्य को समृद्ध करता है।

संदर्भ

1. आदिकालीन हिन्दी साहित्यः अध्ययन की दिशाएँ, (एतिहासिक रास तथा रासन्वयी ग्रंथों की उत्पत्ति और विकास, प्रो. दशरथ शर्मा) संपा. अनिल राय, पृ.214
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 26
3. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, सं. आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा नामवर सिंह, साहित्य भवन प्रयाग, पृ.14
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 27-28
5. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, संपा. नामवर सिंह, साहित्य भवन प्रयाग, पृ 31
6. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ. 56

असिस्टेंट प्रोफेसर, रामलाल आनंद कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मन्नू भंडारी की कहानियों में नारी संघर्ष

एन.हरिप्रसाद

सारः स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिला कथाकार श्रीमती मन्नू भण्डारी का महत्वपूर्ण स्थान है, जिनके अब तक पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ये कहानियाँ गुण तथा मात्रा की दृष्टि से 'नई कहानी' को एक विशेष स्वरूप प्रदान करती हैं। कथा, उपन्यास और नाटक तीनों प्रमुख साहित्यिक विधाओं में मन्नू जी ने अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया। कुछ आलोचक मन्नू भंडारी की कहानियों को व्यक्तिगत चेतना पर आधारित मानते हैं।

स्वतंत्रता के बाद की लेखिकाओं में मन्नू भंडारी एक बहुमुखी लेखिका के रूप में जानी जाती है। उन्होंने कहानी, उपन्यास और नाटक तीन विधाओं में अपना हुनर दिखाया। लेकिन कहानीकार के रूप में वे विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। उनकी कहानियों में युगीन जीवन का सच्चा चित्र अंकित है। व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं के चित्रण के कारण उनकी कहानी यथार्थ प्रतीत होती है। यही कारण है कि कहानी के अधिकांश पात्र और घटनाएँ वास्तविक जीवन से लिए गए हैं।

परिचयः मन्नू भंडारी की कहानियाँ सरल, स्वाभाविक और रोचक लगती हैं। मन्नूजी की कहानियों में पाई जाने वाली कथावस्तु मध्यवर्गीय पाठकों के बीच विशेष रूप से लोकप्रिय है। उन्होंने काव्य की रचना अत्यंत संवेदनशील स्तर पर की। उन्होंने उस वास्तविकता और अनुभव का काव्यात्मक चित्रण किया जिसे उन्होंने जीया और अनुभव किया। उनकी कहानियों का कथ्य जीवन के करीब है। उनकी कहानियों के बारे में डॉ. भेरुलाल गर्ग ने 'स्वातंत्र्योत्तर प्रतिनिधि कहानीकार' नामक लेख में बताया है "मन्नू भंडारी की कहानियाँ सोद्देश्य होती हैं और जीवन के निकट। कहानियों में अनुभूति की गहनता और नए मूल्यों को उभारने की क्षमता भी।"[1]

सक्रिय और संवेदनशील लेखिका होने के कारण मन्नूजी पर समय के बदलते परिवेश का प्रभाव पड़ा। इसलिए उन्होंने उसी बदले हुए समाज और जीवन को अपना कथानक बनाया। उनकी कहानियों में मुख्य रूप से प्रेम-विवाह, विवाहेतर प्रेम-संबंध और स्त्री-पुरुष संबंधों में परिवर्तन को कथा के रूप में वर्णित किया गया है।

विषयः मन्नू भंडारी की कहानियों में भ्रष्टाचार, शोषण, दुर्व्यवहार, अनैतिकता, घुटन, निराशा और अकेलापन आदि समस्याओं के रूप में चित्रित किया गया है। मन्नू जी ने जिन परिस्थितियों का सामना किया, जिन क्षणों का अनुभव किया और जिन समस्याओं का सामना किया, उन्हें कहानियों में अभिव्यक्त कर उनके दृष्टिकोण और व्यक्तित्व का परिचय दिया। इसलिए, उनकी कहानियों का कथ्य मौलिक हो गया क्योंकि वे वास्तविकता से लिए गए थे न कि कल्पना की दुनिया से।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिला कथाकार श्रीमती मन्नू भण्डारी का महत्वपूर्ण स्थान है। जिनके अब तक पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ये कहानियाँ गुण तथा मात्रा की दृष्टि से 'नई कहानी' को एक विशेष स्वरूप प्रदान करती हैं। कथा, उपन्यास और नाटक तीनों प्रमुख साहित्यिक विधाओं में मन्नू जी ने अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया। कुछ आलोचक मन्नू भंडारी की कहानियों को व्यक्तिगत चेतना पर आधारित मानते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. इन्द्रनाथ मदान का मत यहाँ ध्यान देने योग्य है "मन्नु भण्डारी की कहानी कला का मूल स्वर भी वैयक्तिक चेतना से प्रेरित है। इनकी कहानियों में सदैव व्यक्ति की कुण्ठाओं का चित्रण तथा रोमांटिक प्रेम का व्यंग्यात्मक निरूपण है, घुटन, पराजय तथा विवशता की अभिव्यक्ति है।"[2]

मन्नू भण्डारी के कथा - साहित्य में आधुनिकता का एक नयापन स्पष्ट दिखाई देता है। इन्होंने आम मनुष्य की पीड़ा को बहुत ही गहराई से समझा है। अतः स्त्रियों को संघर्ष का एक नया मार्ग दिखाया है, भले ही वह परिवार के बीच हो या समाज के बीच, अपने लिए संघर्ष की नींव को

हमेशा उज्ज्वलित करना सिखाया है। मन्नू भण्डारी विशेषतः 1950 से 1980 के बीच अपने कार्यों के लिए जानी जाती है। सबसे ज्यादा वह अपने दो उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध रही - पहला 'आपका बंटी' और दूसरा 'महाभोज'। "नयी कहानी अभियान के समय में लेखक निर्मल वर्मा, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, कमलेश्वर इत्यादि ने इन्हें अभियान की सबसे प्रसिद्ध लेखिका बताया था। लेकिन मन्नू भंडारी खुद कहती है कि "मेरी कहानियों का संबंध किसी आंदोलन बांदोलन से नहीं है।"[3]

सदियों से पराधीन रही नारी की स्वतंत्रता की चाह को नारीवादी आंदोलन की संज्ञा मिली है। अपने आरंभिक काल में चले आंदोलन को पुरुष विरोधी आंदोलन के रूप में देखा गया। परन्तु बाद में स्पष्ट हुआ कि यह आंदोलन पुरुष विरोधी न होकर व्यवस्था विरोधी आंदोलन है। परिवर्तन उस व्यवस्था में होना चाहिए अथवा उस मानसिकता में होना चाहिए जो नारी को गुलाम बनाए हुए हैं। नारीवाद स्त्री को वस्तु से व्यक्ति बनाने की कोशिश का परिणाम है। इस संदर्भ में 'औरत के हक' में लेखिका तस्लीमा नसरीन कहती है- "जिस दिन समाज स्त्री शरीर का नहीं, उसकी मेधा और श्रम का मूल्य देना सीख जाएगा, सिर्फ उस दिन स्त्री मनुष्य के रूप में स्वीकृत होगी।"[4]

वैश्विक धरातल पर दृष्टिपात करें तो सहज ही ज्ञात होता है कि नारी युगों से पुरुष द्वारा संचालित रही है। बीसवीं शताब्दी में शिक्षा के बढ़ते प्रचार- प्रसार, आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक जागृति आदि के परिणामस्वरूप पहली बार वह अपने अस्तित्व की ओर जागृत होती है। हिंदी में नारीवाद की शुरुआत से पहले, कई महिला लेखिकाएँ अपनी शानदार साहित्यिक कृतियों के लिए जानी जाती थीं। ऐसी लेखिकाओं में उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

मन्नू भण्डारी की कहानियों में नारी के कई रूप चित्रित होते हैं। इनकी स्त्रियों में कुछ परम्परागत हैं तो कुछ पढ़ी-लिखी, कामकाजी और एक विशिष्ट वर्ग की नारियाँ हैं। वह न केवल मनुष्य की विशिष्टता की खोज करती है, बल्कि उसे सच्चे अर्थों में चुनौती भी देती है। डॉ. सच्चिदानंद चतुर्वेदी ने लिखा है- "ये स्त्रियाँ इस बात में विश्वास रखती हैं कि मन का संतोष प्राप्त करने के लिए विवाह भी यदि बाधक बने तो उसे निःसंकोच तोड़ देना चाहिए। क्योंकि देखा गया है कि विवाह प्रायः स्त्रियों की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक बनता है।"[5]

मन्नू भण्डारी ने अपनी कहानियों में ऐसी कई स्त्रियों को गढ़ा है, जो घोर व्यक्तिवादी, स्वतंत्र और अपने वैयक्तिक विकास में विवाह को बंधन स्वीकार करने वाली हैं। उनमें, जीती बाजी की हार, आते-जाते यायावर, घुटन, नई नौकरी आदि उल्लेखनीय हैं। जीती बाजी की हार में मुरला को आत्मनिर्भरता के कारण किसी के साथ की जरूरत महसूस नहीं होती। 'घुटन' एक विशिष्ट कहानी है। इसमें मन्नू भण्डारी ने दो ऐसी नारियों की कथा-व्यथा को वाणी दी है, जो परस्पर विरोधी कारणों से व्यथित हैं। प्रतिमा विवाहित है। उसका पति नेवी में इंजीनियर है। वह जब घर जाता है। तब खूब शराब पीकर प्रतिमा को अपनी बाहों में जकड़ लेता है। प्रतिमा उस जकड़ से मुक्त होने के लिए छटपटाती है। प्रतिमा की यह छटपटाहट घुटन में बदल सकती है, परन्तु मुक्तिमें नहीं। दूसरी तरफ घर में मोना की शादी नहीं हुई। वह अपने प्रेमी अरुण से शादी करना चाहती है। परन्तु मोना की माँ शादी नहीं होने देती। वह मोना की शादी करके अपने आर्थिक हालत बिगाड़ना नहीं चाहती।

'नई नौकरी' की रमा अध्यापिका थी। पढ़ना-पढ़ाना उसका शौक था। पति की प्राईवेट फर्म की नई नौकरी के कारण उसे अपनी नौकरी छोड़नी पड़ती है। पति की यह नई नौकरी उसके अस्तित्व और व्यक्तित्व, उसकी इच्छापूर्ण आकांक्षा और बौद्धिक विकास को निगल जाती है। ऐसे आराम भरी जिन्दगी में वह संतुष्ट नहीं है। वह मात्र पति की परछाई बनना कतई पसंद नहीं करती। वह आधुनिकता की दौर में नई राह और नयेपन में जीना चाहती है। पति कुंदन जब घर से नौकरी के लिए निकलता है, तब वह सोचती है कि कुंदन उसे पीछे छोड़कर बहुत आगे निकल चुका है। यह स्थिति उसके लिए असहाय है। डॉ. सच्चिदानंद चतुर्वेदी का कहना है कि "जो स्त्रियाँ स्वतंत्र विकास करना चाहती हैं उनके लिए विवाह उसी प्रकार बाधक होता है, जैसे कागजों को स्वतंत्र उड़ने से रोकने के लिए पेपरवेइट।"[6]

आते-जाते यायावर की मिताली कॉलेज में पढ़ती है। हॉस्टल में रहती है। काफी समय पहले उसके सहपाठी ने प्यार के नाम पर धोखा दिया था। ऐसे में वैचारिक रूप से पुरुष के प्रति प्रतिशोध की भावना होते हुए भी नरेन से फिर छली जाती है। पुरुष परंपरागत संस्कारों के नाम पर भी नारी से छल करता है। आधुनिकता के नाम पर इसी को मन्नू भण्डारी ने कहानी में उजागर किया है।

नारीवादी दृष्टिकोण मन्नू भण्डारी की 'उँचाई' और 'यही सच है' कहानियों में तीव्र रूप से व्यक्त हुआ है। 'उँचाई' कहानी की शिवानी एक ऐसी नारी है जो एक ही समय पर पत्नी और प्रेमिका दोनों भूमिका अदा करती है। यहाँ एक आधुनिक नयापन दिखाई देता है। विवाहेतर संबंध रखकर यदि पुरुष अपवित्र नहीं होता तो स्त्री कैसे हो सकती है। पवित्रता का संबंध शरीर से नहीं मन से होता है ऐसा कहने वाली पात्र शिवानी अपने पूर्व प्रेमी अतुल के साथ उसके शारीरिक संबंध को न तो अनुचित मानती है, न अनैतिक। यह आधुनिक नारी का नयापन अर्थात् एक से अधिक पुरुषों से संबंध रखते हुए भी स्वतंत्र अस्तित्व और व्यक्तित्व की ऊँचाई पर रह सकती है।

यही सच है- कहानी की दीपा का पात्र भी परम्परागत मूल्यों को आघात पहुँचाकर नारी को नये रूप में प्रस्तुत करती है। दीपा एक समय निशीथ से प्रेम करती है तो निशीथ से धोखा मिलने पर फिर वह संजय से प्रेम करने लगती है। परन्तु नौकरी के लिए इन्टरव्यू देने गई दीपा को निशीथ से पुनः मुलाकात होती है और वह फिर से उससे प्रेम का अनुभव करती है। पारम्परिक मान्यताओं के दायरे से बाहर निकलने का प्रयास करने वाली दीपा सचमुच एक विद्रोही युवती है। मन्नू भण्डारी जी ने यहाँ नारी को बंधा हुआ नहीं दिखाया है, उनमें ऐसी भावुकता को जन्म दिया है, जो कई संबंधों को बनाने में अनैतिक नहीं समझती। अनीता राजूरकर ने दीपा के कथन पर लिखा है- "दीपा ने निशीथ को चाहती है, न संजय को वह सिर्फ अपने आपको चाहती है। वर्तमान क्षणों में जो उसे सुख देता है, वह क्षण ही दीपा की दृष्टि में सत्य है।"[7]

बन्द दरवाजों का साथ कहानी इस सच्चाई को सामने लाती है कि पति से बेवफाई किस तरह एक आधुनिक महिला को तोड़ सकती है। मंजरी विपिन से धोखा खाने पर दिलीप से जुड़ती है। परन्तु एक से धोखा खाने वाली स्त्री चाहकर भी दूसरे के साथ सहज जीवन नहीं जी पाती। मनुष्य न तो छूटी हुई ज़िन्दगी को छोड़ पाता है और न चुनी हुई ज़िन्दगी को अपना सकता है। दोनों ओर खींचा जाकर क्षत-विक्षत हो जाता है। मंजरी की कहानी इसी सच्चाई से रु -ब-रु कराती है। 'एक बार और भी' इसी भाव की कहानी है। इसकी नायिका बिन्नी चौदह वर्षों तक कुंज के साथ प्रेम संबंध रखती है। कुंज अन्य स्त्री से विवाह कर लेने के बाद कुछ लोग बिन्नी को कुंदन से जोड़ने का प्रयास करते हैं। परन्तु नारी का मन कोई ऐसी स्थूल वस्तु नहीं है कि जहाँ चाहे उसे जोड़ा जा सके। इसीलिए बिन्नी चाहते हुए भी कुंदन से रिश्ता नहीं बना पाती। मन्नू भंडारी इस कहानी में एक स्त्री के वस्तु से व्यक्ति बनने के संघर्ष को स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं।

'तीन निगाहों की एक तस्वीर' कहानी की दर्शना परित्यक्ता होकर भी किसी से भी दया नहीं लेती और नौकरी के सहारे जी लेने का निर्णय करती है। नारी की हिम्मत और हर पल संघर्ष करने की ताकत को, मन्नू जी ने दिखाया है। वह अबला बनकर जीने में नहीं बल्कि स्वतंत्र जीने में विश्वास करती है।

'दीवार बच्चे और बरसात' कहानी की नायिका अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व पर पति द्वारा आँच आते देखकर शादी के रिश्ते को तोड़ देती है। क्योंकि वह सब समझती है कि उसकी स्वतंत्रता और जीवन नष्ट हो सकता है। 'हार' कहानी की दीपा राजनीति के क्षेत्र में पुरुष के एकाधिकार को तोड़कर नारी की श्रेष्ठता सिद्ध करती है। क्योंकि वह बंधनों में बंधकर रहने वाली नारी नहीं बनना चाहती, इसलिए पुरुष के प्रभाव को तोड़ती है। 'कमरे कमरा और कमरे' कहानी की नीलिमा कॉलेज के होनहार प्राध्यापिका है, परन्तु शादी के बाद वह अपनी नौकरी छोड़ देती है और बाद में उसका व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है। अपने स्व को तिलांजलि देने वाली नारी की टूटन नीलिमा में दिखाई देती है। यहाँ एक प्रकार से नायिका हारी हुई प्रतीत होती है।

'क्षय' कहानी में कुंती अपने पिता के सिखाए हुए विश्वासों और सिद्धांतों की प्रतिमा है। वह अनुचित समझौते करने से साफ मना करती है। यहाँ तक की जूझते हुए वह न टूटती है, न झुकती है। लेकिन वही पिता के क्षय ग्रस्त होने पर वह इलाज नहीं कर पाती है। इसलिए वह अपने पिता के लिए, कभी भी विश्वास और सिद्धांत से न डिगने वाली कुंती अब जीवन से समझौते के द्वार पर खड़ी है। 'क्षय' मानो पिता के फेफड़े से बढ़कर आसपास फैल गया है, कुंती के संकल्प तक में भी। यह व्यक्ति की हार से अधिक परिवेश और व्यवस्था के प्रदूषण की कथा है, जिसमें सामान्यतः सदाशय तथा मूल्य-विश्वासी व्यक्तिके लिए कसौटियाँ उसकी सामर्थ्य से बड़ी और कड़ी हो उठी हैं।

'सज़ा' अकेले उस पात्र को ही नहीं बल्कि पूरे परिवार को झेलनी पड़ती है। 'असामयिक मृत्यु' में पिता की मृत्यु के रूप में नियति का दंड भोगने वाला दीपू है। असामान्य प्रतिभा के धनी दीपू जिसके अभिनय कौशल ने पहले ही उसके लिए एक चमकीले सितारे का सम्भाव्य भविष्य दोषित कर रखा है। लेकिन दीपू परिवार की जिम्मेदारियाँ सम्भालने के लिए सब भुला देता है। असमय ही वह छोटे भाई-बहन के लिए पिता का बाना पहन लेता है। मानो असामयिक मृत्यु का भागी केवल पिता ही नहीं पुत्र भी हो। उक्त कहानियाँ मन्नू भण्डारी की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

मन्नूजी की कहानियों के कथानक को लेकर डॉ. उर्मिला गुप्ता ने लिखा है कि - "लेखिका ने 'रूढ़िगत' विषयों की अपेक्षा वैविध्य से समयोचित नूतन प्रसंगों को ग्रहण किया है। गौरव की बात यह है कि उनके कथानक एक ओर तथाकथित नई कहानियों की अस्पष्टता एवं दुरूहता से मुक्तहै और दूसरी ओर प्राचीनता का पिष्टपोषण भी उनमें नहीं है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण उनकी अधिकांश कहानियाँ विशेष, स्वच्छ एवं प्रांजल रूप में प्रस्तुत हुई हैं।"[8]

निष्कर्षः मन्नू भण्डारी की कहानियों में नारी का संघर्ष अपनी स्वतंत्रता के रूप में नयापन लिए हुए है। कुल मिलाकर देखे तो मन्नू भण्डारी नारीवादी आंदोलन से जुड़ी हुई लेखिका है। इसके बावजूद नई शिक्षा और सामाजिक विकास के कारण इनकी कहानियों में व्यक्तित्त्व चेतना से भरी हुई नारियों का भरमार है। 'स्व' की रक्षा के लिए वे नारियाँ संबंधों को तोड़ने का जोखिम भी उठाती हैं। इस तरह इनमें एक नयापन दिखाई देता है। नारी का दोयम दर्जा उन्हें स्वीकृत नहीं है। पुरुष केन्द्रित सोच को भले ही वह मिटा नहीं सकती, परन्तु उसके सामने प्रश्न चिह्न तो अवश्य खड़ा करती है। अथवा यह कहा जा सकता है कि उस सोच को उखाड़ फेंकने के लिए वह निरंतर प्रयत्नशील दिखाई देती है। अपने इसी प्रयत्न के चलते कई बार परिवार और समाज से संघर्ष करती हुई टूटती है, तो कई बार अपने आपको स्थापित भी करती है। सचमुच मन्नू भण्डारी नारी जीवन के नए भाव-बोध को आलेखन करने वाली सशक्त कहानीकार है, जिन्होंने स्त्रियों के मन में उनके जीवन में नया संघर्ष अपने अस्तित्व के लिए उत्तेजित किया है।

संदर्भ ग्रंथः

1. डॉ. भेरूलाल गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर प्रतिनिधि कहानीकार(1993), विकास प्रकाशन, पृ.86
2. डॉ. इन्द्रनाथ मदान, नई कहानी दिशा, दशा, संभावना(2003), राजकमल प्रकाशन, पृ.207
3. मन्नू भंडारी, मेरे साक्षात्कार(2016), किताब घर प्रकाशन, पृ.15
4. सिंह आर. एस., मन्नू भारतीय साहित्य(2006), अनंग प्रकाशन, पृ.133
5. वही, पृ. 150
6. मन्नू भण्डारी, दस प्रतिनिधि कहानियाँ(2015), राजपाल प्रकाशन, पृ.27
7. सिंह आर. एस., मन्नू भारतीय साहित्य(2006), अनंग प्रकाशन, पृ.152
8. डॉ. उर्मिला गुप्त, स्वातंत्र्योत्तर कथा लेखिकाएँ (2007), मनीष प्रकाशन, पृ.54

हिंदी प्राध्यापक, शासकीय स्नातक महाविद्यालय
पेनुकोंडा, श्री सत्य साई जिला
आंध्रा प्रदेश - 515 110

बेमेतरा जिले में आर्थिक कारक एवं ग्रामीम शिशु मन्यता : एक भौगोलिक विश्लेषण

मधु

शोध सांराश : आर्थिक विशेषताएँ शिशु मर्त्यता दर को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकों में से एक है। अध्ययन क्षेत्र में 4 विकासखंण्डो से 24 गाँवों का यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से चयन किया गया है। जिनमें 934 महिलाओं से सूचना एकत्र की गई। क्षेत्र में 54.17 प्रतिहजार शिशु मर्त्यता दर है। शिशु मर्त्यता दर 36.40 प्रति हजार बालिकाओं में तथा 69.62 प्रति हजार बालकों में है। आर्थिक में पारिवारिक आय, जोत के आकार, माता एवं पिता के व्यवसाय को शामिल किया है। भूमिहीन परिवारों में शिशु मर्त्यता दर 129.62 प्रतिहजार एवं मध्यम कृषक परिवारों में 17.54 प्रतिहजार है। माता एवं पिता के व्यवसाय में मजदूरी में सबसे अधिक शिशु मर्त्यता दर क्रमशः 157.89, 146.34 प्रतिहजार है एवं सेवा कार्य में संलग्न माता एवं पिता में शिशु मर्त्यता दर क्रमशः 27.02, 15.62 प्रतिहजार है। पारिवारिक आय जैसे-जैसे बढ़ी है वैसे ही शिशु मर्त्यता दर में कमी हुई है। रुपये 50000 से कम आय में 139.53 प्रतिहजार एवं रुपये 120000 से अधिक आय में 15.74 प्रतिहजार है।

शब्द कुंजी - शिशु मर्त्यता, अनुसूचित जाति, प्रतिहजार, परिवारिक।

प्रस्तावनाः जनसंख्या संरचना को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक - प्रजननता, मर्त्यता और प्रवास हैं। आयु के अनुसार मृत्युदर में अत्यधिक विचलन होता है। शिशु मर्त्यता दर सामान्यतः किसी जनसंख्या समूह में जीवन स्तर का बहुत अच्छा सूचक है। न्यून शिशु मर्त्यता दर, अच्छे जीवन स्तर का परिचायक होता है। साथ ही किसी भी जनसंख्या के सामान्य स्वास्थ्य का सूचक है (थामसन लेविस,1965)। मृत्यु का दबाव जनसंख्या के सभी आयु वर्गों में एक सा नहीं होता है। 0-6 एवं 60 से अधिक आयु वर्गों में मृत्यु का दबाव अधिक होता है, तो 7-59 आयु वर्ग में मृत्यु का दबाव कम होता है। शिशु मर्त्यता दर किसी वर्ष में एक वर्ष से कम आयु वाले एवं मृत शिशुओं की संख्या का अनुपात है। फ्रीडमैन (1964) डेविस एवं नोटेस्टीन (1945) के अनुसार शिशु मर्त्यता दर जिन विकासशील देशों में है, उन देशों में प्रजननता दर अधिक है। अतः प्रजननता को कम करने के लिए शिशु मर्त्यता दर में कमी लाना होगा। गार्डन (1971) के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों शिशु मर्त्यता दर में शहर में शिशु मर्त्यता दर की अपेक्षा अधिक पायी गयी है। विकासशील देशों में उच्च प्रजननता के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु मर्त्यता दर उत्तरदायी है।

अध्ययन क्षेत्र : छत्तीसगढ़ राज्य के बेमेतरा जिले के उत्तर पश्चिम मध्य भाग में स्थित है। इसका विस्तार 21.90' उत्तरी अक्षांश तथा 81.90' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है, इसका क्षेत्रफल 624.98 वर्ग किलोमीटर है। जिले की समुद्र सतह से औसत उँचाई 278 मीटर है। जिले का अपवाह तंत्र महानदी अपवाह तंत्र के अंतर्गत आता है। शिवनाथ नदी महानदी की प्रमुख सहायक नदी है, शिवनाथ नदी जिले की प्रमुख नदी है। जिसकी प्रमुख सहायक नदी आमनेर, हाप, सुरही और डोंकु नदी है। भूवैज्ञानिक की दृष्टि से यह जिला प्रायद्वीपीय शील्ड़ का एक भाग है, जिसमें आर्कियन पुरा प्रोटोजोइक, कैनोजोइक और क्वार्ट्नरी काल के चट्टानें विद्यमान है। जिले की भौगोलिक स्थिति पूर्णतः मैदानी है तथा जिले का जलवायु उष्ण है। जिले में वन क्षेत्र निरंक है। उसमें वृक्षारोपण का क्षेत्र 1.41 वर्ग किमी. पर है। जिले में सड़क परिवहन का विकास हुआ। जिले में राष्ट्रीय राजमार्ग की संख्या 02 है, राष्ट्रीय राजमार्ग 30 कवर्धा, बेमेतरा, रायपुर, कांकेर, जगदलपुर मार्ग तथा राष्ट्रीय राजमार्ग 130 सिमगा से बिलासपुर के बीच बेमेतरा जिला को जोड़ती है। रेल परिवहन और वायु परिवहन का अभाव है। बेमेतरा जिला में 2011 के जनगणनानुसार कुल जनसंख्या 795759 व्यक्तिहै। 2001 से 2011 के दशक में जिले में जनसंख्या वृद्धि 29.39 हुई है। जहाँ 279 व्यक्तिप्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या घनत्व है। जिले में प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 1002 है। जिले में अनुसूचित जाति 17.16 प्रतिशत् तथा अनुसूचित जनजाति 4.07 प्रतिशत् है। जिले की कुल जनसंख्या 90.62 प्रतिशत् जनसंख्या गाँवों तथा शेष 9.38 प्रतिशत् जनसंख्या नगरों में निवासरत है।

अध्ययन के उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य

बेमेतरा जिले में शिशु मर्त्यता दर की स्थिति का आंकलन एवं उसको प्रभावित करने वाले आर्थिक कारकों का विश्लेषण करना है।

आँकड़ों के स्त्रोत एवं विधि तंत्र : प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। आँकड़ों के संकलन के लिए तीन प्रकार की अनुसूची का प्रयोग किया है। प्रथम-परिवारिक, द्वितीय-व्यक्तिगत एवं तृतीय ग्राम अनुसूची। इस अध्ययन हेतु बेमेतरा जिले के चार विकासखण्ड से 24 गाँव का चयन प्रतिचयन यादृच्छिक विधि से किया गया। जिनमें गाँव के उन्हीं 934 महिलाओं से सूचना ली गई है, जिनके यहाँ गत वर्ष में किसी शिशु को जन्म दिया हो एवं जिनकी एक वर्ष से कम उम्र में शिशु की मृत्यु अथवा मृत जन्म हुआ। इन महिलाओं से शिशु मृत्यु तथा प्रभावित करने वाले आर्थिक सम्बन्धी जानकारी एकत्र किया गया है।

शिशु मर्त्यता : शिशु मृत्यु का सम्बन्ध आयु के प्रथम वर्ष में होने वाली मृत्यु से है। यह किसी वर्ष में एक वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं की मृत्यु संख्या और उसी वर्ष में जन्म लेने वाले कुल जीवित शिशुओं की संख्या का अनुपात है, जिसे प्रति हजार में व्यक्त किया जाता है।

उसी वर्ष सजीव जीवित जन्मों की कुल संख्या

बेमेतरा जिले में 54.17 प्रति हजार शिशु मर्त्यता दर है जो सम्पूर्ण भारत (47 प्रति हजार) एवं छत्तीसगढ़ (42.0 प्रति हजार, एस.आर.एस., 2011) से काफी अधिक है। जिले में बालकों से बालिकाओं में शिशु मर्त्यता दर कम है। शिशु मर्त्यता दर बालिकाओं में 36.40 प्रति हजार तथा बालकों में 69.62 प्रति हजार है। जिसका प्रमुख कारक जैविकी दृष्टि से शिशु बालिका श्रेष्ठ होती है, जिससे प्रारम्भिक नवजात अवधि में शिशु बालिकाओं के जीवित रहने की संभावना अधिक होती है (जैन, 1985) मधु एवं टिके सिंह (2022) । बेमेतरा और नवागढ़ विकासखण्ड में प्रारम्भिक नवजात मर्त्यता दर (क्रमशः 33.05 और 30.17 प्रति हजार) तथा नवजात मर्त्यता दर (क्रमशः 4.13 और 8.62 प्रति हजार) दोनों ही कम है। किन्तु साजा विकासखण्ड में प्रारम्भिक नवजात मर्त्यता दर अपेक्षाकृत कम (28.98 प्रति हजार) है और नवजात्तोतर मर्त्यता दर अधिक (14.49 प्रति हजार) है। इसके विपरीत नवागढ़ विकासखण्ड में जहाँ (43.10 प्रति हजार) शिशु मर्त्यता दर सबसे कम है। (4.31 प्रति हजार) नवजातोत्तर मर्त्यता दर भी है (सारणी क्रमांक 1)। साजा और बेरला विकासखण्ड में जहाँ शिशु मर्त्यता दर अधिक है, जो (क्रमशः 62.80 और 68.29 प्रति हजार) यहाँ पर जनांकिकीय कारकों में विवाह की आयु जन्म-क्रम और जन्म-अन्तराल में कमी होने से शिशु मर्त्यता दर प्रभावित हुआ है।

स्त्रोतः व्यक्तिगत सर्वेक्षण 2020.

मृत्यु का कारण

शिशु मृत्यु के अनेक कारण है, जनांकिकी विदों ने शिशु मर्त्यता के कारणों को दो वर्गों में रखा है -

1. अन्तर्जात कारण - अन्तर्जात कारण मूलतः जैव कारण होते हैं, जिनमें अपिरपक्वता (अवधि पूर्व जन्म, जन्म के समय शिशुओं का वजन 250 ग्राम से कम) जन्म के समय ही विकृति, आन्तरिक अभिघात, जन्म की चोंटे, श्वास में तकलीफ और जीवन के प्रारम्भिक दिनों में व्यवस्थित पालन-पोषण की कमी है।

2. बहिर्जात कारण - इसके अन्तर्गत बीमारियों को मुख्य रूप से रखा जाता है, जैसे- निमोनिया, संक्रामक रोग, दुर्घटना आदि। अधिकांश मृत्यु के कई कारण होते हैं, जिसमें से बिमारियाँ सर्वाधिक हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार, 1990 से 2017 तक 27 वर्ष में 5 वर्ष से कम आयु के शिशुओं में 72 लाख बच्चों की मृत्यु हुई है। विश्व में 2012 में शिशु मृत्यु दर 22.1 प्रतिशत था, वहीं 2016 में यह घट कर 17 प्रतिशत पर आ गया।

बेमेतरा जिले में सबसे अधिक शिशु मर्त्यता निमोनिया से 21.44 प्रतिहजार हुई है। अन्य कारणों में (पीलिया, दुर्घटना, रक्तद्रोष, बुखार) आदि है जिसमें शिशु मर्त्यता दर 15.80 है। 7.90 प्रतिहजार शिशु मर्त्यता दर श्वास में तकलीफ में है।

शिशु मर्त्यता को प्रभावित करने वाले आर्थिक कारकः शिशु मर्त्यता आर्थिक स्तर को प्रभावित करने वाले कारकों में से एक हैं । जनांकिकीयवेताओं द्वारा आर्थिक स्तर एवं शिशु मर्त्यता दर सम्बन्धों को स्वीकार किया गया है। नोटेस्टीन (1945) एवं संयुक्तराज्य (1954) के द्वारा किए गए अध्ययनों के आधार पर विकासशील देशों में जनसंख्या का दबाव अधिक उत्पादकता का निम्न स्तर कृषि पर आर्थिक निर्भरता एवं यातायात के साधनों की

कमी होती हैं। इन देशों में प्रजननता एवं शिशु मर्त्यता दर अधिक होती है। प्रायः मध्यम एवं निम्न आय वर्ग में शिशु मर्त्यता दर उच्च तथा उच्च आय वर्ग में कम होती है। निम्न आय वर्ग में महत्वकाक्षाएँ सीमित होती हैं। कम आय वर्ग के व्यक्ति बच्चों को आय के स्रोत के रूप में देखते हैं एवं ईश्वर की देन समझते हैं। इनमें बच्चों की शिक्षा एवं बेहतर पालन-पोषण की कोई आंकाक्षाएँ नहीं होती। अतः बच्चे दायित्व नहीं समझे जाते। उपरोक्तकारणों से निम्न आय वर्ग में प्रजननता अधिक होती है। जिससे शिशु मर्त्यता दर अधिक पायी जाती है। फलेग (1982) के अनुसार आर्थिक विकास का सीधा संबंध शिशु मर्त्यता दर पर नहीं पड़ता बल्कि उच्च जन्म दर ही उच्च शिशु मर्त्यता दर का कारण है। चन्द्रशेखर (1959) ने शिशु मर्त्यता दर को आर्थिक विकास एवं प्रजननता को नियंन्नित करने का सुझाव दिया है। रोडगर्स (1979) ने अपने अध्ययन में शिशु मर्त्यता दर पर आय के वितरण के प्रभाव का विश्लेषण किया है और पाया की आय के वितरण और शिशु मृत्यु दर में घनिष्ट संबंध होता है। आर्थिक कारकों में शिशु मर्त्यता दर को प्रभावित करने वाले जोत के आकार, माता एवं पिता का व्यवसाय, पारिवारिक आय महत्वपूर्ण है।

जोत के आकार : जोत के आकार शिशु मृत्यु को निर्धारित करने वाला एक महत्वपूर्ण आर्थिक सूचक है। जोत के आकार एवं शिशु मृत्युदर में विपरित संबंध होता है। अनुज एक्का (2018) शिशु मर्त्यता दर छोटे जोत के आकार में अधिक तथ शिशु मर्त्यता दर वृहत जोत के आकार में अपेक्षाकृत कम पाई जाती है। मेहता (1982) शिशु मर्त्यता दर गरीब वर्ग में समृ वर्ग की तुलना में अधिक पायी जाती है। बेमेतरा जिले में शिशु मर्त्यता दर जोत आकार में वृद्धि के साथ क्रमशः कमी हुई हैं। क्लार्क (1968) ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीय क्षेत्रों की तुलना में श्रम शक्ति अधिक होती है।

बेमेतरा जिले में भूमिहीन जोत के आकार के अन्तर्गत 6.53 प्रतिशत परिवार, 2 हेक्टेयर से कम जोत के आकार (सीमांत एवं लघु कृषक) 23.66 प्रतिशत, 2 से 4 हेक्टेयर जोत के आकार (अर्द्ध मध्यम कृषक) 63.06 प्रतिशत, 4 से 8 हेक्टेयर (मध्यम कृषक) 6.21 प्रतिशत, 8 हेक्टेयर से अधिक जोत के आकार (वृहत कृषक) 0.54 प्रतिशत परिवार आते हैं। सबसे अधिक मर्त्यता दर भूमिहीन परिवार में 129.62 प्रतिहजार है (सारणी क्रमांक 3)। जिले भूमिहीन में राउत 750.00, तेली 142.85 एवं सतनामी अन्य 100.00 प्रति हजार है। सीमांत एवं लघु कृषक में गोंड़ 153.84, सतनामी 151.51 प्रति हजार है। अर्द्ध मध्यम कृषक में कैवट 76.92, तेली 56.93 प्रति हजार है। मध्यम कृषक में तेली 47.61 प्रति हजार है।

माता का व्यवसाय : शिशु मर्त्यता दर विभिन्न व्यवसायों में लगी महिलाओं में अलग-अलग है। महिलाओं की कार्यसहभागिता शिशु मर्त्यता दर को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक माता का व्यवसाय है। कार्यशील महिलाएं अपने शिशु के देखभाल में पर्याप्त समय नहीं दे पाती, जिससे शिशु को सही समय पर सुविधाएँ नहीं मिल पाती। फलस्वरूप अकार्यशील महिलाओं की तुलना में शिशु मर्त्यता दर अधिक होती है। इसी प्रकार गैर कृषि व्यवसायों में लगे महिलाओं में कृषक महिलाओं से शिशु मर्त्यता दर अधिक होती है। शिशु मर्त्यता के विश्लेषण में पिता के व्यवसाय से माता का व्यवसाय अधिक उपयुक्तकारक है। यह शिशु के पालन-पोषण के समय की मात्रा एवं शिशु के स्तनपान के समय सारणी को निर्धारित करता है।

बेमेतरा जिले में 80.63 प्रतिशत महिलाएँ कृषि, 4.92 प्रतिशत कृषि मजदूर, 4.71 प्रतिशत मजदूरी, 4.07 प्रतिशत सेवा एवं 5.67 प्रतिशत अन्य सेवा (दर्जी, कढाई -बुनाई) में कार्यरत है। जो महिलाएँ कृषि कार्य में हैं, उनमें शिशु मर्त्यता दर 48.74 प्रतिहजार, कृषि-मजदूर में 95.23 प्रतिहजार, मजदूरी में सबसे अधिक 157.89 प्रतिहजार, सेवा में 27.02 प्रतिहजार एवं अन्य कार्य में 39.21 प्रतिहजार है (सारणी क्रमांक 4)। जिले में तेली जाति मजदूरी में शिशु मर्त्यता दर 250.00, सतनामी 90.90 प्रति हजार है। कृषि- मजदूर में राउत 750.00, अन्य 333.33 प्रति हजार है। कृषि में गोंड 100.00, केवट 83.33 प्रति हजार है। सेवा में तेली 41.66 तथा अन्य सेवा में सतनामी 142.85 प्रति हजार है।

पिता का व्यवसाय : पिता के व्यवसाय पर पिता की आय परिवार में बच्चों के पालन पोषण की क्षमता को इंगित करती है - बोंग (1969)। शिशु मर्त्यता दर और पिता के व्यवसाय में घनिष्ठ संबंध होता है। किंतु विभिन्न व्यवसाय में संलग्न लोगों में शिशु मर्त्यता दर समान नहीं होता है। विश्व के अधिकांश समाजों में रोजी -रोटी का दायित्व मुख्यतः पुरूषों पर ही होता है। इसी कारण श्रम शक्तिमें संलग्न पुरुषों की संख्या महिलाओं से अधिक होती है। पिता के आर्थिक

स्थिति अच्छी होने पर शिशु मर्त्यता दर कम होती है, इसके विपरित पिता के आर्थिक स्थिति निम्न होने पर शिशु मर्त्यता दर अधिक होती है। व्यापार एवं सेवाओं में संलग्न पिता से कृषक, कृषि श्रमिक तथा अन्य श्रमिकों में शिशु मर्त्यता दर अधिक होती है। कम आर्थिक स्तर वाले परिवारों में आर्थिक बच्चों का जन्म होता है। क्योकि उनमें शिशु मर्त्यता दर अधिक होती है मैडेंलबाम (1974)।

बेमेतरा जिले में 79.02 प्रतिशत पिता कृषि, 5.03 प्रतिशत कृषि मजदूरी, 5.03 प्रतिशत मजदूरी, 6.96 प्रतिशत सेवा और 3.96 प्रतिशत पिता अन्य कार्य में कार्यरत है। मजदूरी कार्य में सलंग्न पिता में शिशु मर्त्यता 146.34 प्रति हजार है, कृषि मजदूरी में 93.02 प्रति हजार, कृषि में 51.28 प्रति हजार, सेवा में 15.62 प्रति हजार एवं अन्य कार्य में सलंग्न पिता में 27.77 प्रति हजार शिशु मर्त्यता दर है (सारणी क्रमांक 5)। जिले में सतनामी जाति मजदूरी कार्य में सलंग्न पिता में 222.22, तेली में 190.47 प्रति हजार है। कृषि मजदूर में लोधी जाति के पिता में 500.00, तेली 150.00 प्रति हजार शिशु मर्त्यता दर है। कृषि कार्य में सलंग्न पिता सतनामी अन्य में 111.11,गोंड 96.77 प्रति हजार है। सेवा कार्य सलंग्न पिता में तेली जाति के पिता 28.57 तथा अन्य कार्य सलंग्न पिता के तेली 62.50 प्रति हजार शिशु मर्त्यता दर है।

पारिवारिक आय : पारिवारिक आय जनसंख्या के सभी आंतरिक एवं बाह्य गुणों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रू प से प्रभावित करता है। किसी परिवार का संपूर्ण आय एवं व्यय द्वारा उसकी आर्थिक स्थिति निर्धारित होती है, तथा आय के स्तर से जीवन स्तर का निर्धारण होता है। अतः जिन परिवार के व्यक्तियों का जीवन स्तर निम्न होता है, उसमें शिशु मर्त्यता दर अधिक पायी जाती है। आय की असमानता से शिशु मर्त्यता दर प्रभावित होता है। फ्लेग (1982) के अनुसार अर्द्ध विकसित देशों में उँची शिशु मर्त्यता दर का प्रमुख कारण आय की असमानता का अत्यधिक होना है। विभिन्न आय स्तर के लोगों में शिशु मर्त्यता दर समान न होकर भिन्न- भिन्न होता है। गरीबी और शिशु मर्त्यता दर में सीधा संबंध होता है। उच्च आय का स्तर शिक्षा, अनुकूल व्यावसायिक स्तर आदि से संबंधित होता है, जिससे शिशु मर्त्यता दर निम्न होती है।

जिले में 5.25 प्रतिशत परिवार की वार्षिक आय रुपये 50000 से कम, 19.16 प्रतिशत परिवार रुपये 50000.70000 आय, 25.80 प्रतिशत परिवार रुपये 70000.90000 आय, 35.97 प्रतिशत परिवार रुपये 90000.120000 एवं 13.82 प्रतिशत परिवारों के रुपये 120000 से अधिक आय है। शिशु मर्त्यता कम आय वाले परिवार में अधिक देखने को मिली है। रुपये 50000 से कम आय वाले परिवार में शिशु मर्त्यता 139.53 प्रति हजार, रुपये 50000.70000 आय में 78.31 प्रति हजार एवं रुपये 120000 से अधिक आय वाले परिवार में शिशु मर्त्यता 15.74 है जो सबसे कम है, जैसे-जैसे आय बढ़ती गयी वैसे ही शिशु मर्त्यता दर में कमी हुई है (सारणी क्रमांक 6)। जिले में रुपये 50000 से कम आय में राउत, गोंड़ जाति में 500.00 प्रति हजार एवं तेली में 150.00 प्रति हजार शिशु मर्त्यता दर है। रुपये 50000.70000 आय में राउत 142.85 एवं कैवट 111.11 प्रति हजार है। रुपये 70000.90000 आय में कुर्मी, गोंड़ जाति 125.00 एवं कैवट जाति में 111.11 प्रति हजार है। रुपये 90000.120000 आय में लोधी जाति में 105.26, गोंड 100.00 तथा रुपये 120000 से अधिक आय में 71.42 प्रति हजार शिशु मर्त्यता दर सतनामी जाति में है।

शिशु मर्त्यता दर

1. उच्च मर्त्यता (> 65 प्रतिशत)

इसके अन्तर्गत बेरला विकासखण्ड जिसमें मर्त्यता दर 65 से अधिक है। जिसका मुख्य कारण स्वास्थ्य सुविधाओं में कमी, शिक्षा गुणवता में कमी, निम्न आय का होना एवं जोत का आकार छोटा होना है।

2. मध्यम मर्त्यता (60 - 65 प्रतिशत)

इसके अन्तर्गत क्षेत्र में साजा विकासखण्ड है, जिसमें 60 से 65 है। विकासखण्ड में रुढ़िवादी सोच, लोगों में जागरूकता का अभाव, माता-पिता कृषि कार्य में संलग्न है।

3. निम्न मर्त्यता (< 60 प्रतिशत)

इसके अन्तर्गत दो विकासखण्ड बेमेतरा एवं नवागढ़ विकासखण्ड शामिल है। जिसमें मर्त्यता दर 60 है। जिसका कारण स्वास्थ्य सुविधाओं का अधिकता, जीवन स्तर का उच्च होना, शिक्षा की अधिकता, उच्च आय का होना एवं जोत का आकार बड़ा होना है।

निष्कर्ष : आर्थिक कारकों में शिशु मर्त्यता को

प्रभावित करने वाले जोत के आकार, माता व पिता का व्यवसाय एवं पारिवारिक आय महत्वपूर्ण है। बेमेतरा जिले में शिशु मर्त्यता दर वृहत जोत आकार में कम पाया गया है। शिशु मर्त्यता दर मजदूरी में संलग्न परिवारों में अधिक पाया गया है। शिशु मर्त्यता दर और वार्षिक परिवारिक आय में विपरित संबंध पाया गया है।

सुझाव : सामाजिक - आर्थिक कारकों के अंतगर्त समाज के क्षेत्र में सुधार करके लघु जोत के आकार वाले एवं भूमिहीन कृषक कुछ खेती लेकर नई - नई तकनीक का उपयोग कर अपने आय में वृद्धि कर सकते है। जो माता -पिता कृषि कार्य में संलग्न हैं, वो सरकारी योजनाओं एवं नई - नई तकनीक को अपनाकर कार्य को और उन्नत कर सकते है।

सन्दर्भ सूची

1. एक्का, ए. 2018 : जशपुर जिले अनुसूचित जनजातियों में आर्थिक - सामाजिक विशेषताएँ एवं शिशुमर्त्यता दर ,उत्तर प्रदेश ज्यूग्राफीकल जर्नल कानपुर ,मूल्य.23, पेज सं. 94-103 ।
2. क्लार्क, आई. जे. आई. ,1968, जनसंख्या भूगोल, के जनसांख्यिकी ,परगामन प्रेस , ऑक्सफोर्ड, जनसांख्यिकी रिसर्च।
3. खान, एम. ई. 1993, शिशु मर्त्यता दर के सांस्कृतिक निर्धारक, द जर्नल ऑफ फैमिली वेलफेयर, मूल्य. 39, सं. 02, पेज सं. 3-13 ।
4. गार्डन, जे. ई., 1971, परिवारो पर जनसंख्या का दबाव : परिवार का आकार बच्चो में अंतर रेपिड जनसंख्या वृद्धि के परिणाम और नीति प्रभाव, मूल्य. 2, सं. 1-2, पेज सं. 478-90 ।
5. चन्द्रशेखर, एस.1959, भारत में शिशु मर्त्यता 1901-51,न्यूयार्क, संयुक्तराज्य।
6. जैन, ए . के. ,1985, ग्रामीण क्षेत्र में शिशु मर्त्यता दर में क्षेत्रीय भिन्नता के निर्धारक : जनसंख्या अध्ययन, मूल्य.39, सं.3 ,पेज सं. 407- 424 ।
7. डेविस, के., 1945,भारत और पाकिस्तान की जनसंख्या प्रिंसटन, प्रिंसटन वि ाविद्यालय प्रेस।
8. थामसन, डब्लू.एस. एंड लेविस, डी . टी., 1965, प्राब्लम, टाटा एमसी ग्रा हिल पब्लिशिंग कम्पनी. लिमिटेड, नई दिल्ली ।
9. नोटेस्टीन, एफ., 1945, क्लास डिफरेंसेस इन फर्टिलिटी, इन आर बेंडाक्स एंड. एस एम. लिपसेट(ईडीएस.), क्लास स्टेटस एंड पावर, ग्लेनको।
10. फ्लेग,ए. टी. , 1982, अविकसित देशों में शिशु मर्त्यता दर के निर्धारण के रूप में आय निरक्षरता और चिकित्सा देखभाल की ,जनसंख्या अध्ययन, मूल्य. 36, सं. 3।
11. फ्रीडमैन दोब्राच, 1964, प्रजननता के लिए आर्थिक स्थिति का संबंध, अमेरिकी आर्थिक समीक्षा, मूल्य. 53, सं.03,पेज सं.414-426।
12. बोग, 1969 : जनसांख्यिकी का सि ांत, जान विले और संस,न्यूयार्क।
13. मधु एवं टिके सिंह , 2022, बेमेतरा जिले के ग्रामीण क्षेत्र में जनांकिकीय कारक एवं शिशु मर्त्यता , एक भौगोलिक अध्ययन : उत्तर प्रदेश ज्यूग्राफीकल जर्नल कानपुर मूल्य.27, पेज सं. 166-181।
14. मेहता, एस.आर.1982 : एक द्वीप गाँव इलाके में सामग्री और बालधन और परिवार नियोजन, द जर्नल ऑफ फैमिली वेलफेयर, मूल्य.38, सं.4,पेज सं.66-77 ।
15. मैडेंलबाम ,डेविड जी.1974 : भारत में मानव प्रजनन क्षमता : सामाजिक घटक और नीति परिप्रेक्ष्य, ऑक्सफोर्ड वि ाविद्यालय प्रेस ,दिल्ली ।
16. रोडगर्स , एफ. 1979, मृत्युदर के निर्धारक के रूप में आय और असमानताः एक अंतराष्ट्रीय क्ंरास सेक्शन विश्लेषण, जनसंख्या अध्ययन, मूल्य. 33, सं. 02,पेज सं.343।
17. संयुक्त राज्य, 1954. जनसंख्या प्रवृतियों के निर्धारकों और परिणामों में प्रजनन क्षमता को प्रभावित करने वाले आर्थिक और सामाजिक कारक , न्यूयार्क,पेज सं.71-.97। शोधनिर्देशक : डॉ. टिके सिंह, सहायक प्राध्यापक,

शोध छात्रा . भूगोल अध्ययनशाला,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
MO. 9340047843, 9165523259.
Gmail: madhusahu3964@gmail.com.

हानूश : संघर्षशील कलाकार की संवेदानात्मक अभिव्यक्ति

डॉ. रमीष.एन

मानव संघर्षशीलप्राणी है। जीवन का प्रत्येक क्षण या पहलू उसके लिए संघर्ष का माहौल प्रस्तुत करता है। जिंदगी के प्रत्येक क्षेत्र में अर्थात राजनीतिक सामाजिक पारिवारिक धार्मिक आर्थिक क्षेत्र में उनको संघर्ष करना पड़ता है। प्रत्येक कलाकार भी उन संघर्षों से जूझकर आगे बढ़ता है।

'हानूश' का राजनीति से संघर्ष: प्रायः हमारे जीवन के सभी पहलुओं पर राजनीति का विशेष प्रभाव रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद देश की स्थिति और ज़्यादा बिगड़ गयी। राजनीतिक उथल- पुथल के कारण लोगों की मानसिकता मोहभंग की थी। राजनीति के क्षेत्र से सारे मूल्य गायब हो चुके हैं। भारत-चीन, भारत-पाकयुद्ध ने जनता को युद्धोपरांत समस्याएँ भोगने के लिए बाध्य कर दिया। साहित्यकारों ने इन राजनीतिक विसंगतियों का विरोध अपने साहित्य में किया है।

सामाजिक जीवन को सुगम बनाने के लिए अनुशासन की ज़रूरत है। इसके लिए राजनीति सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य अंग बनी। अंग्रेजी सरकार की गुलामी से मुक्त होकर स्वतंत्र जीवन बिताना हर नागरिक का सपना था। राजनीति का मुख्य उद्धेश्य जनता का हित है और उनका कर्म जनता की सेवा करना है।

स्वतन्त्रता के बाद सभी नागरिकों को बराबरी का दर्जा, अवसर की समानता, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, संस्था व संघ बनाने की स्वतंत्रता, समानाधिकार, हर तरह के भेदभाव से मुक्तितथा स्वधर्म का पालन आदि के वादे दिए गए थे। सुविधा भोगी एवं अवसरवादी नेताओं से राजनीति भ्रष्ट होती गयी। अपनी सुख सुविधा के लिए किसी भी हद तक जाने को वे तैयार हुए । सत्ता और अधिकार हथियाने की भागदौड में सुरक्षित मूल्य भ्रष्टाचार और स्वार्थ की आग में जलकर भस्मीभूत हुए। भारतीय राजनीति में स्वजनवाद, भ्रष्टाचार, स्वार्थ-जातिवाद, सांप्रदायिकता, दल-बदल आदि का प्रवेश होने लगा। सभी मानवीय मूल्यों का तिरस्कार होने लगा।

नेताओं के लिए राजनीति अपनी स्वार्थपूर्ति का साधन मात्र रह जाती है। उसकी इच्छाएं एवं आकांक्षाएं सफल होती हैं। राजनीतिज्ञों ने साधारण जनता को अपना खिलौना बना दिया और अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कार्य करने लगे। वास्तव में जनता की सेवा करने के लिए ही नेता लोग राजनीति में आये थे। चुनाव जीतने के लिए जनता को झूठे वादे तथा आश्वासन दिए गए कि वे जनता की सभी मांग पूरी करेंगे तथा उनके सुधार में संलग्न रहेंगे।

जनता के सामने नेता लोग अपना आदर्श रूप प्रस्तुत करते हैं। असल में वे स्वार्थी एवं ढोंगी हैं। इन्हें चुनाव में जिताकर जनता अपना जीवन और दुष्कर बनाती जाती है। क्योंकि चुनाव जीतने के बाद नेता अपना वास्तविक रूप दिखाने लगते हैं । जनता की परवाह करना छोड़कर अपनी बात वे सोचते हैं। आधुनिकनेताओं में सेवा-मनोभाव, ईमानदारी, चारित्रिक एवं नैतिक दृढ़ता का अभाव परिलक्षित होता है। भीष्म साहनी का नाटक 'हानूश' में राजनीतिज्ञों की अवसरवादिता, कूटनीतिज्ञता, स्वार्थता, बेईमानी, क्रूरता, आदि दिखाई देती है। हानूश को राजा से सज़ा इसलिए मिलती है क्योंकि उसने एक अनोखी घड़ी का निर्माण किया। कलाकार को हमेशा सत्ता से संघर्ष करना पड़ता है। क्योंकि राजनीतिज्ञों को कलाकार की सृजनशीलता से हमेशा डर रहता है।

कला में वह शक्तिहै जो सत्ता को हिला सकती है। सत्ताधारी तो अपना अधिकार हरगिज़ छोड़ना नहीं चाहते हैं। वह स्वार्थ भावना से ग्रसित रहता है। अपने अधिकार को जारी रखना, अपने और अपने आश्रितों के भविष्य को सुनहला बनाना उनका परमलक्ष्य बन गया है। इसलिए जनता को दबाव में रखकर उनपर राजनीति भिन्न-भिन्न हथकण्डों का प्रयोग करती हैं, चाहे वह धमकी, हत्या या डकैती हो।

भीष्म साहनी के नाटक 'हानूश' में राजा सत्ताधारी और हानूश आम जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजा हानूश के खिलाफ खड़ा रहता है क्योंकि हानूश एक सृजनशील एवं संवेदनशील कलाकार है। अपनी कुर्सी को कायम रखने के लिए राजा व्यापारियों एवं गिर्जेपालों के पक्ष

में रहते हैं और आम प्रजा होने के कारण हानूश को दमित किया जाता है। हानूश' में जॉर्ज की बातों से यह स्पष्ट होता है - "राजा प्रजा की भलाई नहीं, अपनी भलाई पहले देखता है।"[1] संवेदनशील कलाकार में सत्ता की नींव हिलाने की क्षमता होती है।

सत्ता और कलाकार के बीच का द्वंद्व सदियों से चला आ रहा है। कलाकार सत्ता के निरंतर शोषण के आघात से पीड़ित है। सत्ता द्वारा होनेवाले शोषण के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रिया कलाकार साहित्य या कला द्वारा व्यक्तकरता है। समाज के प्रति प्रतिबद्ध कलाकार सत्ता के शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं। भीष्म साहनी के 'हानूश' में इसकी सफल अभिव्यक्तिहुई है।

सत्ता की एक विशेषता यह होती है कि सत्ता अपने अस्तित्व को बनाए रखने में बाधा डालनेवाली सभी चीज़ों पर ध्यान देते हैं। समाज में होनेवाली हर एक हरकत के प्रति सत्ताधारी सतर्क रहना चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्तिकी प्रवृत्तियों को अपने अधीन लाने या उसे दबाने का प्रयास तानाशाही शासक की वृत्ति है । तानाशाही शासक समाज को हमेशा अपने काबू में रखने का प्रयास करता रहता है। देश में कोई काम सत्ता की अनुमति एवं इच्छा के विरुद्ध नहीं होना चाहिए, यही तानाशाही शासक का आग्रह है। 'हानूश' नाटक के राजा की मानसिकता भी यही है। हानूश ने सोलह सालों के प्रयत्न से घड़ी बनायी थी। लेकिन इस बात का पता राजा को तब होता है जब उन्हें घड़ी के समारोह पर बुलाया गया था। इतनी बड़ी बात उनसे छिपाई गयी। इससे राजा हानूश पर क्रुद्ध होते हैं। तानाशाही शासक को हमेशा यह डर रहता है कि जनता का प्रत्येक कर्म शासन को उलट-फेर कर सकता है। यही सोच उसे हमेशा रहती है। इसलिए वह सभी कार्यों पर कड़ी निगरानी रखते हैं। जब घड़ी मीनार पर लगायी जाती है तो राजा हानूश से पूछता है- "इस घड़ी को लगाते समय तो तुमने हमसे नहीं पुछा, क्यों?"[2]

हानूश ने घडी बनाने में अपना सोलह साल गंवाया। जब वह अपने काम में सफल हो जाता है। तब उसपर सत्ता का हस्तक्षेप होता है, सत्ता अपना अधिकार दिखाता है। हानूश की कला को प्रोत्साहन देने के बजाय राजा उसे सज़ा देते हैं। क्योंकि राजा को अपनी रियासत में होनेवाली बात की जानकारी नहीं हुई कि पिछले सोलह सालों से हानूश घड़ी बनाने की कोशिश करता रहा है। तानाशाही शासकों की मानसिकता राजा में दिखाई गयी है। उनकी बातों से यह ज़ाहिर हो जाता है- 'किसकी इजाज़त से तुमने यहाँ पर घड़ी को लगा दिया है? हमें इसकी इस्तला क्यों नहीं दी गयी? दस्तकार हमसे छिपकर काम करने लगे हैं। यह हमारी रियासत है। यहाँ हमारा हुक्म चलता है, हमारी इजाजत के बिना कोई काम नहीं किया जा सकता। दस्तकार सरकश हो रहे हैं। हम इसकी इजाजत नहीं देंगे।"[3] घड़ी को नगरपालिका में लगा देखकर राजा खुश नहीं थे क्योंकि वह घड़ी अपने महल में रखवाने की इच्छा थी। सभी चीज़ों व कार्यों पर वह अपना अधिकार ज़माना चाहता है। उसकी निगरानी सब छोटे कार्यों पर रहती है।

तानाशाही शासक स्वार्थी होते है इसलिए वे सारी सुख-सुविधा प्राप्त करने के लिए दूसरों को कुचलते हैं। वह केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कार्य करते है। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए वह उच्चवर्गीय लोगों के साथ जुड़े रहते है। शासकों की मानसिकता हमेशा उच्चवर्गीय लोगों की इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए शासकवर्ग तैयार हो जाते हैं। इस बीच आम जनता का जीवन ज्यादा बोझिल बन जाता है। 'हानूश' के राजा व्यापारियों एवं गिर्जेवालों से अच्छा व्यवहार करता है। ये लोग समाज में उच्च स्थान में आनेवाले हैं। हानूश ने जो घड़ी बनायी है पहले उसकी सहायता गिर्जेवालों ने की थी और बाद में नगरपालिका वालों के अनुदान से ही घड़ी पूरी हुई थी।

नगरपालिका के मीनार में घड़ी लगायी जाती है और गिर्जेवालों की तरह राजा भी इससे नाखुश है। लेकिन वे सौदागर लोगों से झगड़ा करना नहीं चाहते थे और गिर्जेवालों को रूष्ठ भी नहीं कर सकते थे। राजा हमेशा दोनों के बीच संतुलन कायम रखता है। क्योंकि इन दोनों का असर उसके ऊपर है। राजा किसी एक के दबाव में रहना नहीं चाहता है और वह कूटराजनीति का प्रयोग करता है।'हानूश' को बूढ़ा लोहार का कथन इस प्रकार है "राजा कभी किसी का दोस्त नहीं होता। वह कभी एक की पीठ थपथपाता है तो कभी दूसरे की। वह देखेगा कि दस्तकार सर उठाने लगे हैं तो वह सामंतों और गिर्जेवालों की पीठ थपथपाए। जब देखेगा कि गिर्जेवाले इसे उठा रहे है तो दस्तकारों की पीठ थपथपा देगा। यही नीति है।"[4]

सत्ताधारी की स्वार्थबुद्धि को व्यक्तकरते हुए भीष्म

साहनी ने 'हानूश' के राजा को प्रस्तुत किया है। हानूश ने जो घड़ी बनायी थी वह अनोखी थी। घड़ी नगरपालिका के मीनार पर लगायी गयी थी और घड़ी के समारोह के वक्त राजा का स्वागत किया गया । वहाँ व्यवसायियों दवारा दूसरी घड़ी बनाने की योजना की बात की गयी तो राजा नाराज़ होते है क्योंकि वह अनोखी घड़ी उसकी शान को बढानेवाली चीज़ है। उस तरह की घड़ी वह और कहीं देखना नहीं चाहता था। क्योंकि इस प्रकार करने से उसकी शान को चोट पहुँच सकती है। राजा की बातों से यह व्यक्तहो जाती हैः- "आज तो दूर-दूर के लोग हमारी घड़ी को देखने आयेंगे। जो चीज़ हमारे शहर में है, वह किसी दूसरे शहर में नहीं है। अगर और नगरों में भी होगी तो हमारी घड़ी को कौन हानूश को दूसरी घड़ी बनाने की इजाजत नहीं दे रहे हैं। देखेगा?"[5]

'हानूश' नाटक की रचना तत्कालीन राजनीतिक परिवेश के अनुसार हुई थी। हानूश की रचना सन 1977 में हुई थी। सन 1975 की आपातकालीन परिस्थिति में की अभिव्यक्तिहानूश में मिलती है। आपातकाल में लोगों पर कर्फ्यू लगा दी गयी थी। जनता के हर काम में रोक लगा दी गई थी। उस समय का राजनीतिक वातावरण तानाशाही शासन का था। साहित्यकार एवं कलाकारों पर रोक लगायी गयी थी। उसकी प्रतिक्रिया भीष्म साहनी ने हानूश' के द्वारा व्यक्तकिया है। नाटक में भी इसी वातावरण में हानूश ने अपनी सर्जनात्मकता का परिचय घड़ी के निर्माण द्वारा दिया था। उस वक्तभी सभी कार्यों पर शासक की रोक थी। राजा के कथन से इसका पता चलता है :- "राज्य में सब काम सरकार की इजाज़त से होते हैं। तुमने हमसे घड़ी बनाने की इजाज़त क्यों नहीं ली?"[6] हानूश के द्वारा अपनी सृजनधर्मिता को उन्होंने यहाँ व्यक्तकिया है।

तानाशाही शासक को कला या साहित्य के प्रति कोई अभिरूचि न होते हुए भी कला को प्रोत्साहन देता है। 'हानूश' में महाराज अपना ढोंग दिखाता है। वे कलाकार की प्रतिभा से ज्यादा उस चीज़ को महत्त्व देते है जिसे उसने बनायी है। कलाकार की मेहनत उसके लिए कोई मायने नहीं रखता है। इसलिए हानूश की घड़ी को महत्त्व देते हुए भी हानूश को अन्धा बना दिया जाता है। राजा का कथन इस प्रकार हैः- "इस आदमी को और घड़ियाँ बनाने की इजाज़त नहीं होगी। इस हुक्म पर अमल करवाने के लिए... हानूश कुफ्लसाज़ को उनकी दोनों आँखें निकाल दी जाएँ। उसकी आँखें नहीं होंगी तो और घड़ियाँ नही बना सकेगा।"[7] अनोखी चीज़ के निर्माता को सम्मान के बदले सज़ा दी जाती है।

तानाशाही शासक अपनी स्वार्थ के लिए कलाकार का दमन करता है। अनोखी घड़ी बनाने के कारण हानूश को धन, ओहदे आदि प्राप्त होते हैं, पर उसे अंधा बनाया जाता है। लेकिन सत्ताधीश हानूश के अन्धे होने पर भावुक नहीं होता है। जब दो साल बाद घड़ी बंद होती है तो हानूश को ही घड़ी ठीक करना पड़ता है। और हानूश पर शहर छोड़ जाने का इलज़ाम लगा दी गयी । तानाशाही शासक की क्रूरता, एवं कट्टरता को यहाँ भीष्म साहनी ने प्रस्तुत किया है।

हानूश का धर्म के साथ संघर्ष : धार्मिक अवधारणाएँ समाज की उन्नति के लिए हैं। लेकिन राजनीति एवं धर्म का नाजायज़ सम्बन्ध ने धर्म की पवित्रता पर घोर चोट पहुँचाया है। भीष्म साहनी ने 'हानूश' में राजनीति के उपर होनेवाले धर्म के प्रभाव के बारे में उल्लेख किया है। धर्म हमारे समाज घर भी बहुत अधिक प्रभाव डालता है। समाज के नियमों से धर्म जुड़ा रहता है। हर व्यक्ति धर्म के इर्द-गिर्द घूमनेवाला है। धर्म के रास्ते पर चलने के लिए समाज विवश हो जाता है चाहे उसके लिए सही हो या गलत।

धार्मिक लोग अपना प्रभाव समाज एवं राजनीति में बरकरार रखने की कोशिश करते रहते हैं। उन्हें भी स्वार्थ की चिंता है। भीष्म सहनी के 'हानूश' में इसका चित्रण किया है। 'हानूश' में हानूश का भाई पादरी है। जब एक मामूली कुफ्तसाज़ होकर भी अनोखी घडी बनाना चाहता है। पादरी भाई गिरजाघर से उसको सहायता दिलवाते हैं। हानूश' को गिरजाघर से वजीफा देकर उसने कोई एहसान नहीं किया है। बल्कि इसमें भी उनका स्वार्थ है।

"पहले मैं भी सोचता था कि घड़ी बन जाएगी तो अपने ही गिरजे पर इसे लगवा दूँगा। मैंने लाटपादरी से कह भी दिया था कि घड़ी बन रही है जो भगवान के घर की शोभा बढ़ाएँगी। लेकिन अब जाहिर हो गया है कि यह खामख्याली थी, इसे छोड़ देना ही उचित था। मैं स्वयं एक सपना देखने लगा था।"[8] पादरी की इन बातों से पता चलता है कि वे लोग कला के प्रति कोई अभिरुचि रखनेवाले नहीं

हैं। उन्हें घडी के महत्त्व के बारे में कोई जानकारी नहीं है। गिर्जेवालों को हानूश पर या उसके घड़ी बनाने के अश्रांत परिश्रम से कोई तालूकात नहीं है।

राजनीतिज्ञों की तरह धार्मिक लोग भी कला को स्वार्थपूर्ति का साधन मानते हैं। घड़ी गिरजे पर लगेगी तो ज्यादा लोग गिरजे में आयेंगे। धर्म का प्रचार ही उनका मुख्य लक्ष्य था। पादरी भाई की बातों से यह व्यक्तहो जाता है :- "तुमने घड़ी नहीं बनायी होती तो आज के दिन इस वक्तलोग गिरजे में बैठे होते। आज गिरजे में कुछेक बूढों को छोड़कर कोई आया ही नहीं।"[9]

दस सालों तक हानूश को गिरजाघर से वजीफा मिलता है। तब भी घड़ी न बनी तो उसका वजीफा बंद कर दिया गया। हानूश का काम पूरा नहीं हो जाता है। बाद के पाँच सालों में हानूश को सौदागर लोगों की सहायता मिलती है और घड़ी का निर्माण पूर्ण होती है। लेकिन घडी बनने के बाद गिर्जेवाले और सौदागर के बीच झगडा हो जाता घड़ी को न बनते देखकर वे हानूश के ऊपर आरोप लगाने लगे। चूंकि घड़ी है।

नगरपालिका से प्राप्त अनुदान से बनी है, इसलिए घड़ी नगरपालिका के मीनार पर ही लगा दी जाती है। जब हानूश माली इमदाद के लिए लाट पादरी के पास गया था तब उसने हीरा को शैतान की औलाद' कहकर ठुकराया। "नगरपालिका के सदस्य जॉर्ज की हानूश को पता चलता है?- लाट पादरी ने कहा था कि तुम शैतान की औलाद है जो घड़ी बना रहे हो। घडी बनाना इन्सान का काम नहीं: शैतान का काम है।"[10] लाट पादरी हानूश के बारे में यह भी कह रहा था - "घड़ी बनाने की कोशिश करना ही चुरा की तौहीन करना है। भगवान ने सूरज बनाया है, चाँद बनाया है, अगर उन्हें घड़ी बनाना मंजूर होता तो क्या वह घड़ी नहीं बना सकते थे? उनके लिए क्या मुश्किल था? इस वड़ि आसमान में घड़ियाँ-ही-घड़ियाँ लगी होतीं। सूरज और चाँद ही भगवान की दी हुई घड़ियाँ हैं। जब भगवान ने घड़ी नहीं बनाई तो इनसान का घड़ी बनाने का मतलब ही क्या है?"[11]

राजनीतिज्ञ अक्सर धार्मिक नेताओं के अनुकूल चलनेवाले होते हैं। धर्म का प्रभाव उनपर ज्यादा रहता है। 'हानूश' नाटक में राजा हमेशा लाट पादरी के दबाव में रहता है, राजा उन्हीं के अनुसार कार्य करते हैं। नगरपालिका के सदस्य जान के कथन से यह साफ स्पष्ट होता है :- " .... वह तो अपना मुँह खोलने से पहले लाट पादरी के मुँह की ओर देखते हैं।"[12] राजनीति पर धर्म के प्रभाव को 'हानूश' नाटक में अभिव्यक्ति मिली है। जब हुसाक ने राजा से व्यापारियों की नुमाइन्दगी दरबार में माँगी तो राजा ने कुछ कहने से पहले लाट पादरी की ओर ताका था। राजा जहाँ भी जाता है लाट-पादरी उनके पास हमेशा रहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि "बादशाह सलामत तो लाट पादरी के हाथ में कठपुतली बने हुए हैं।"[13]

सौदागर-व्यापारियों से संघर्ष : व्यापारी लोग सब चीज़ों को व्यापार की नज़र से देखते है। वे मानते हैं:-"जो पैसे देता है, चीज़ उसी की होती है, यह तो व्यापार की बात है।"[14] शेवचेक की इन बातों से स्पष्ट होता है कि व्यापार ही उनके लिए मुख्य है। वे घड़ी के महत्व को समझनेवाले हैं। घड़ी बनने के बाद गिर्जवाले घड़ी की माँग कर रहे थे चूँकि अंतिम पाँच सालों से पहले ही वजीफा देना बंद कर दी थी। घड़ी को लेकर सौदागर एवं लाट पादरी के बीच संघर्ष रहता है।

घड़ी को मीनार पर लगाने के लिए कई तक प्रमाने करते हैं:- "यह शहर का मरकज़ है। शहर का सारा कारोबार यहीं होता है। दिसावर से सैकड़ों व्यापारी लोग आते हैं। यहाँ घड़ी लगाने पर लोग दूर-दूर से उसे देखने आया करेंगे। यात्रियों का ताँता लगा रहेगा। अभी से लोगों को पता चल गया है कि कोई घड़ी बनी है, किसी कुपलसाज़ ने घड़ी बनायी है।... मैं तुम्हें सच कहता हूँ। इस बात की बड़ी धूम मचेगी । यूरोप भर से लोग इसे देखने आया करेंगे। हमारे व्यापार को चार चाँद लग जाएँगे।"[15]

नगरपालिका में घड़ी लगाने से उन्हें एक और फायदा है। वे राजदरबार में नुमाइन्दगी चाहते थे । शेवचेक का कथन है :- "इसीलिए मैं कहूँगा कि नगरपालिका पर घड़ी लगाकर बादशाह सलामत का स्वागत करें। दरबार में हमें नुमाइन्दगी मिलनी चाहिए, कम-से-कम हमारे आदमी तो दरबार में बैठें। बादशाह सलामत खुश होंगे तो हमारी रवासत्त मंजूर कर देंगे।"[16] व्यापारी लोग अपनी शक्तिको भी दिखाना चाहते हैं। क्योंकि उन्हें पता है कि " बादशाह इनसाफ को नहीं ताकत को देखता है।"[17] सौदागर के लिए हानूश की घड़ी लक्ष्यपूर्ति का साधन मात्र है। मुनाफा ही उसका चरम लक्ष्य है। वे सिर्फ अपना व्यापार बढ़ाना चाहते

हैं। टाबर कहता है:-"हमें घड़ी की नुमाइश से नहीं, मुनाफे से मतलब है।"[18]

व्यापारी लोग हानूश के नेतृत्व में घड़ियाँ बनाने की योजनायें तैयार करते हैं ताकि वे उसका व्यापार कर सकें। उनके लिए साहित्य, कला आदि बिकाउ हैं। हानूश को अपने पास रखने के लिए वे उसकी बेटी की शादी एक व्यापारी के बेटे के साथ करवाने की योजनाएँ तैयार करते हैं। ताकि अपने पादरी भाई की बात न सुनें। क्योंकि व्यापारी लोगों को गिर्जेवालों से नाराज़गी है। और वे हानूश को उनके साथ मिलाना चाहते हैं।

पारिवारिक संघर्ष : आर्थिक विपन्नता 'हानूश' का एक और मुद्दा है। हानूश एक आम कुफ्लसाज़ है जो ताले बनाकर अपने परिवार का पालन पोषण करता है। मामूली कुफ्लसाज़ होते हुए भी वह एक संवेदनशील कलाकार भी था। उसके मन में एक घड़ी बनाने की तीव्र इच्छा जाग गयी। बचपन में उसने कहीं देश में लगी घड़ी के बारे में सुना था। उसने घड़ी बनाने का काम शुरू किया। हानूश का परिवार आर्थिक कठिनाईयों से गुज़र रहा था। इस वक्त हानूश अपना काम छोड़कर घड़ी के निर्माण में लगा रहता है। इससे उसके घर की हालत और बिगड़ जाती है।

हानूश का प्रारंभ हानूश की पत्नी कात्या और पादरी भाई के बीच के संवाद से होता है और इसमें पारिवारिक संकट को तीव्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है। काल्या ? हानूश के बारे में कहती है:-" उसमें पति वाली कोई बात हो तो मैं उसकी इज्ज़त करूँ। जो आदमी अपने परिवार का पेट नहीं पाल सकता, उसकी इज्ज़त कौन औरत करेगी"[19] घड़ी के निर्माण में बार-बार नाकामयाब होते हुए भी वह अपने लक्ष्य को छोड़ता नहीं है। इससे उसकी पत्नी कात्या निराश हो उठती है..... जो अतीत से सब कोई हासिल नहीं करता, वह वर्तमान में भी अँधा और भविष्य में भी अँधा बना रहता है। आप कहते हैं, मैं पीछे मुड़कर नहीं देखा करूँ, मुझे इस ब्याह में क्या मिला है? छोटी सी थी जब मैं इसके घर ब्याह कर आई। घर में हानूश को कोई पूछता ही नहीं था। दुनिया में इज्ज़त भी उसी की होती है जिसका घरवाला कमानेवाला हो। "यह सभी की पूँछ बना घूमता था। और आज यह दिन आया, इसकी हालत सुधरने की बजाय और भी नीचे गिरती गई है।"[20] गरीबी के कारण हानूश का बेटा मर गया था। हानूश अपने परिवार के प्रति चिंतित है। फिर भी वह अपनी शौक को जारी रखना चाहता है। घड़ी बनाने के लिए पादरी भाई की याने गिरजाघर की ओर से आर्थिक अनुदान मिलता है। इससे उसकी परेशानियाँ दूर नहीं होती हैं। घड़ी बनने में दुविधा होते देखकर वह दुविधा में पड़ता है लेकिन व्यापारियों से अनुदान प्राप्त होता है। दूसरों की सहायता से ही हानूश ने घड़ी बनायी है। 'हानूश' नाटक का हानूश अपनी शौक से घड़ी बनाता है। उसमें किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं था। लेकिन उसकी सहायता करनेवाले सौदागर और धार्मिक लोग स्वार्थी थे। वे कला को खरीदना चाहते हैं। दूसरों से सहायता लेने के कारण हानूश को चुप रहना पड़ता है। वह यह भी तय नहीं कर पाता कि घड़ी कहाँ लगाना है। शासक भी कलाकार के स्वातंत्र्य पर बाधा डालता है। इस प्रकार इस नाटक में भीष्म साहनी ने मध्यवर्गीय समाज में जीनेवाले कलाकार अपनी परिस्थितियों से जो संघर्ष करता है उसका चित्रण किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ

आधार ग्रंथ : हानूश : भीष्म साहनी, राजकमल, नई दिल्ली -1986

1. हानूश : भीष्म साहनी पृ.सं-59
2. वहीं पृ.सं-93
3. वहीं पृ.सं-94
4. वहीं पृ.सं-49-50
5. वहीं पृ.सं-97
6. वहीं पृ.सं-98
7. वहीं पृ.सं-98
8. वहीं पृ.सं-39
9. वहीं पृ.सं-84
10. वहीं पृ.सं-62
11. वहीं पृ.सं-62
12. वहीं पृ.सं-64
13. वहीं पृ.सं-57
14. वहीं पृ.सं-63
15. वहीं पृ.सं-64
16. वहीं पृ.सं-58
17. वहीं पृ.सं-59
18. वहीं पृ.सं-66
19. वहीं पृ.सं-29
20. वहीं पृ.सं-31-32

Head & Assistant Professor, Dept:Of Hindi
Malabar College Of Advanced
Studies Vengara , Malappuram DT

आत्मकथा

देवयानम्

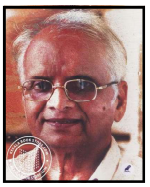

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

दसवाँ देवपद - कर्मपथ पर

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

कोल्लम नगर के वटयाट्टुकोट्टा नामक इलाके में श्रीकृष्ण का एक सुप्रसिद्ध मंदिर है। उणिच्चक्कं नामक घर के बुजुर्ग ने उसका निर्माण किया थाय़ उन्होंने 'श्रीरामविलास' नामक एक प्रकाशन संस्था भी स्थापित की थी। इस संस्था के द्वारा कथकली-साहित्य , तुल्लल कथाएँ (केरल की विशिष्ट कला ओट्टन तुल्लल), एषुत्तच्छन की कृतियाँ ('अध्यात्म रामायण' के रचयिता महान कवि श्री तुंचत्तु रामानुजन एषुत्तच्छन) आदि प्राचीन उत्कृष्ट रचनाओं का प्रकाशन किया गया था। पंडित बापू रॉव ने ही यह कठिन काम सफलतापूर्वक किया था। साहित्य पंचानन श्री पी के नारायण पिल्लै के शोध-प्रधान ग्रंथ "महाकवित्रयों का अध्ययन' का प्रकाशन भी उन्होंने किया था। श्रीरामविलासं के द्वारा प्रकाशित 'मलयालराज्यं' पत्र का केरल के राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक महत्वपूर्ण स्थान था। मलयालराज्यं के सप्ताहांत संस्करण एवं चित्र-पत्रिका में यहाँ के सभी प्रमुख साहित्यकार अपनी रचनाएँ प्रकाशित करते थे। ऐसी प्रतिष्ठित संस्था में काम करने का सुअवसर मुझे मिला; यह बड़ा सौभाग्य है अपना।

बिना किसी प्रशिक्षण के मैंने यह काम शुरू किया था तो भी बहुत जल्दी ही दफ्तर का सारा काम - जैसे डेस्क का कार्य (Desk Work), समाचार-लेखन, लेख, कविता आदि का संशोधन, संपादकीय, अनुवाद, ग्रंथों का संशोधन, प्रमुख साहित्यकों के साथ संपर्क आदि - मैंने सीख लिया ता। सबेरे दस बजे के पहले मैं दफ्तर पहुँचता था और आधी रात तक काम करता रहता था। अगले दिन के पत्र की पहली प्रतिलिपि पढ़ने के बाद ही मैं दफ्तर से घर लौट जाता था। पत्र के प्रबंध समिति के सदस्य श्री.एन.माधवन नायर के साथ अब भी मेरा संपर्क है। वे अब चेन्नै में अपने परिवार के साथ रहते हैं।

कोल्लम नगर में मैं अपने बंधु श्री वी.के.मूत्ततु के साथ रहता था। लेकिन मेरा दफ्तर वहाँ से बहुत दूर था। इसलिए कुछ दिन बाद मैंने आनंदवल्लीश्वरं के किसी लॉड्ज (lodge) में रहने का निश्चय किया। वहाँ मैं बड़े लड़के उठ नहा-धोकर मंदिर में भगवान का दर्शन करने जाता था। किसी ब्राह्मण के घर से भोजन मिलने की व्यवस्था की गई थी। वहाँ के प्रसिद्ध संगीतज्ञ गुरु श्री. राजगोपाल अय्यर का शिष्य बन कर मुझे वीणा-वादन सीखने का सुअवसर भी मिला था।

मलयालराज्यं के दफ्तर का काम मेरेलिए अवश्य संतोषजनक था; जिस पर प्रतिष्ठित साहित्यकारों से मिलने के अनेक मौके भी मुझे मिले थे। प्रसिद्ध उपन्यासकार 'उरूब' (श्री.पी.सी.कुट्टिकृष्णन) को केंद्र साहित्य अकादमी का अवार्ड मिलने पर उनका जो अभिनंदन समारोह हुआ था; उस अवसर पर मुख्य भाषण देने का दायित्व मेरा था। महाकवि जी.शंकरकुरुप्पु, श्रीमती. कटत्तनाट्टु माधवियम्मा, श्री.पी.के.परमेश्वरन नायर, श्री.वी.आर. परमेश्वर पिल्लै इत्यादि सुप्रसिद्ध साहित्यकारों से मिलने तथा उनकी रचनाओं के प्रकाशन का सौभाग्य भी मुझे मिला था। मुख्यमंत्री श्री पट्टम ताणुपिल्लै, कानून के मंत्री श्री.के.चंद्रशेखर आदि राजनैतिक नेताओं के सम्मेलनों में भाग लेने का मौका मुझे मिला था। श्रीरामविलासं प्रकाशन संस्था में काम करते समय अपनी कुछ रचनाओं के प्रकाशन करने की सुविधा भी मुझे मिली थी। उनमें प्रमुख हैं श्री गिरीश चंद्र घोष के 'विल्वमंगल ठाक्कुर' नामक बंगला नाटक का मेरा अनुवाद। मलयाराज्यं चित्र-पत्रिका में उसका प्रकाशन हुआ था। यह तो विशेष स्मरणीय एवं आह्लाद की बात हुई थी। कभी-कभी मैं पत्र का संपादकीय भी लिखता था। अर्थात् अपने पत्र से संबंधित हर काम में मैं अपने सहयोगियों पर हाथ बँटाता था।

इसी अवसर पर 'देशबंधु' नामक पत्र में अपने मित्र श्री सी एन श्रीकंठन नायर के साथ एक विशेष काम करने के लिए मुझे जाना पड़ा। एन.एस.एस (Nair Service Society) के संस्थापक श्री मन्नत्तु पद्मनाभन नायर के शताभिषेक के अवसर पर उपहार के रूप में उन्हें एक स्मरणिका समर्पित करने का निश्चय किया गया था। यह स्मरणिका तैयार करने के लिए मैं अपने मित्र के साथ कोट्टयम के साहित्य प्रवर्तक संघ के दफ्तर में दो महीने तक रहे। उसके बाद श्रीरामविलास के अपने दफ़्तर में दो महीने तक रहे।

एक दिन तृश्शूर जिला के पुऱनाट्टुकरा के श्रीरामकृष्ण आश्रम से श्री त्रैलोक्यानंद स्वामी मुझ से मिलने दफ़्तर आये थे। उनके आश्रम की ओर से स्वामी विवेकानंद की जन्म-शती पर उनकी संपूर्ण कृतियों का समाहार प्रकाशित करने का प्रयत्न हो रहा था। "विवेकानंद साहित्य सर्वस्वं (Complete Works of Swami Vivekananda) और "विवेकानंद शतक प्रशस्ति" नामक स्मरणिका इन दोनों का संपादकीय मुझे करना था। मलयालराज्यं की प्रशासन मण्डली की अनुमति पाकर मैं अपना मन-पसंद यह काम करने के लिए कोषि़क्कोटु (calicut) के श्रीरामकृष्ण आश्रम पहुँचा जहाँ इस की सारी तैयारियाँ हुई थीं। आश्रम में मेरे रहने का प्रबंध किया गया था। जल्दी ही मैं ने अपना काम शुरू किया था। मलयालम साहित्य के सर्वश्रेष्ठ समालोचक श्री कुट्टिकृष्णन मारार, सुप्रसिद्ध पत्रकार श्री एन एन कोरात्तु और श्री त्रैलोक्यानंद स्वानी मुझे आवश्यक उपदेश एवं निर्देश देते रहते थे। श्री मारार के साथ कान करने का यह सुअवसर मेरे लिए अमूल्य है। प्रसिद्ध कवि श्री कुंजुण्णि मास्टर के साथ भी इस समय मेरा सुदृढ़ संबंध हो गया था। इस प्रकार लेख लिखना, पढ़ना, प्रार्थना करना, साहित्य संबंधी चर्चाओं में भाग लेना आदि के साथ सत्संग में भी मैं भाग लेता था। इस प्रकार महीना-भर यही बात होती थी। (क्रमशः)

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'रक्षाबंधन' किसका ऐतिहासिक नाटक है?
2. 'कर्ण की आत्मकथा' किस विधा की रचना है ?
3. 'अंधायुग' किसकी रचना है?
4. नयी कविता में लघु मानव की प्रतिष्ठा किसने की ?
5. 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल' - किसकी पंक्तियाँ है?
6. पद्मावत का रचनाकार कौन है?
7. गया प्रसाद शुक्ल का उपनाम क्या था?
8. पुनर्जागरण दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा है - किसकी पंक्ति है?
9. चिश्ती संप्रदाय के भारत में प्रवर्तक कौन है?
10. दादू दयाल की वाणियों का संपादन सर्व प्रथम किस नाम से किया गया?
11. सिख संप्रदाय के प्रवर्तक कौन थे?
12. 'हिंदी साहित्यः बीसवीं शताब्दी' के रचनाकार कौन है?
13. वज्रयान का केंद्र कहाँ रहा?
14. 'मगहर' किसका मृत्यु स्थल है?
15. 'महासुखवाद' का प्रवर्तन किस शाखा में हुआ?
16. डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त ने किसे हिंदी का प्रथम कवि माना है?
17. 'चिरंजीव महाकाव्य' किसकी रचना है?
18. रीतिकाल को किसने 'शृंगारकाल' पुकारा?
19. 'गुरु अन्यास' किसकी प्रसिद्ध रचना है?
20. 'जूठन' किसकी आत्मकथा है?

उत्तर

1. हरिकृष्ण प्रेमी
2. उपन्यास
3. धर्मवीर भारती
4. विजयदेव नारायण साही
5. महादेवी वर्मा
6. मलिक मुहमद जायसी
7. सनेही/त्रिशूल
8. डॉ. रामविलास शर्मा
9. मुईनुद्दीन चिश्ती
10. हरडे बानी
11. गुरु नानक
12. नंददुलारे वाजपेई
13. श्रीपर्वत
14. कबीरदास
15. वज्रयान शाखा
16. शालीभद्र सूरि
17. डॉ.एन. चंद्रशेखरन नायर
18. आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
19. शिवनारायण
20. ओमप्रकाश वाल्मीकी

केरल हिंदी प्रचार सभा से सेवानिवृत्त कर्मचारी श्रीमती वहीता एवं श्रीमती रमणी का सम्मान संयुक्त रूप से सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) बी. मधु एवं अध्यक्ष श्री. एस. गोपकुमार कर रहे हैं। साथ में दर्शित है कोषाध्यक्ष श्री. जी.सदानंदन

श्रीमती रमणी का सम्मान

सभा के कर्मचारियों के साथ पदाधिकारीगण

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-06-2024
Date of posting : 20th of Every month

KERALJYOTI

JUNE 2024

Vol. No. 61, Issue No.03
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

केरल के राज्यपाल महोदय श्री. आरीफ़ मुहम्मद खान द्वारा भाषा समन्वय वेदी के सदस्यों के दिए गए एक भव्य आयोजन का दृश्य

श्री चित्रा होम में

सरस्वती सम्मान प्राप्त कवि श्री प्रभा वर्मा का सम्मान

श्रोतागण

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवननंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam